R.N.I.-
UPHIN/2001/3996
ISSN- 2581-6128

स्थापन दिवस के 25वें वर्ष में प्रवेश

शहर समता

(हिंदी साप्ताहिक)

www.shaharsamta.com

शोध पत्र

'कर्मक्षेत्र रणभूमि यही है, मानव हो तुम कर्म करो।
कर्म से कभी विमुख न रहना, मन में यह संकल्प करो।'-
उमेश श्रीवास्तव

संस्थापकः स्व0 कन्हैया लाल, स्व0 श्रीमती साधना श्रीवास्तव
सम्पादकः उमेश चन्द्र श्रीवास्तव

विजयलक्ष्मी विभा विशेषांक

वर्ष 25 | अंक 10 | रविवार, इलाहाबाद, 27 जुलाई 2025 | पृष्ठ 8 | विशेषांक मूल्यः 5 रू0

संपादकीय

इस बार विजयलक्ष्मी विभा

उमेश श्रीवास्तव

दृष्टि, सृष्टि की प्रबल अनोखी ,
जग भर ही भरमाया है ।
क्या काया है, क्या माया है ?
इसी धुरी सब आया है ।

बात हो रही है विजय विभा की ,
जग आलोकित होता जिससे ।
पूरा का पूरा ब्रह्मांड ,
इसी रस मे समाया है ।

तो बात हो रही हिय वरिष्ठ साहित्यकार विजयलक्ष्मी विभा की । साहित्यिक वातावरण में पली बढ़ी विजयलक्ष्मी विभा जी में बचपन से ही कविता अंकुर फूट था। शुरुआती दिनों में वह तुकबंदी करती थीं परंतु धीरे-धीरे शिक्षा-दीक्षा के बाद उनकी दृष्टि प्रबल होती गयी। उन्होंने कविता, कहानी, ग़ज़ल, लेख, संस्मरण आदि गद्य-पद्य की सभी विधाओं में कलम चलाई। वरिष्ठ साहित्यकार विजयलक्ष्मी विभा जी का रचना फलक काफी व्यापक है । पिता श्रेष्ठ साहित्यकार थे , इसलिए बचपन से ही साहित्यिक वातावरण उन्हें मिला जो उनकी रचनात्मक क्षमता को व्यापक बल प्रदान करता रहा । दुख-सुख जीवन के तमाम उतार-चढ़ाव का अनुभव करती हुई आज उनकी दृष्टि इतनी प्रबल हो गई है, कि उनकी हर रचना में एक दृष्टि मिलेगी, जीवन का सार मिलेगा और मिलेगा सुख । इसी सुख की तलाश में मनुष्य जीवन भर भटकता है, लेकिन विजयलक्ष्मी जी को यह मिला और काफी जद्दोजहद के बाद मिल । बानगी देखिए -

पहली बानगी

तृप्ति हेतु भरती घट नीर से ,
बन जाता किन्तु वह अथाह,
बढ़ता है ऐसा प्रतिकूल हो ,
अनबूझी तृषा का प्रवाह ।

दूसरी बानगी-

पथ पर जीवन चला सदा , पर ,
मंज़िल मिली मरण को ,
मार्ग थका बोझिल हो लेकिन ,
गौरव मिला चरण को ।

वरिष्ठ साहित्यकार विजयलक्ष्मी विभा जी को इस वर्ष का **'महिला श्री साहित्य साधना सम्मान 2025'** देते हुए संस्था प्रसन्न है। और आपके सुंदर भविष्य की कामना करता है। इस अंक में प्रकाशित विद्वानों का मैं आभारी हूं जिनके आलेख से अंक समृद्ध हुआ। अंक कैसा लगा प्रतिक्रिया जरूर दें।

अंत में

रच-रच कर शब्द अनेक ,
लिखे जाते हैं कई प्रत्येक ।
पर विभा की बात निराली ,
इनकी रचना बहुत विशेष ।

उमेश श्रीवास्तव

आत्म कथ्य

विजयलक्ष्मी विभा

प्रत्येक सृष्टि का एक बीज होता है और प्रत्येक बीज से एक सृष्टि उत्पन्न होती है । समूचे विश्व की सृष्टि, जड़ और चेतन की सृष्टि, जीव जन्तुओं की सृष्टि, भावनाओं की सृष्टि, विचारों की सृष्टि , सभी प्रकार की सृष्टि का अंकुरण एक बीज से होता है । कविता की सृष्टि उस बीज से होती है जो कवि के मानस में माता पिता की विरासत के रूप में पड़ा होता है या प्रकृति की प्रेरणादायी शक्तियां उसे समर्पित करती हैं ।

मेरा बचपन कविता कहानियां और संगीत की स्वर लहरियों के मिश्रित वातावरण में सुनते-सुनाते शनैः शनैः कदम बढ़ा रहा था। पिताजी का कवि होना मुझे मज़ा देने लगा । वो कविता का एक छंद लिखते, फिर उसे बड़ी तबियत से गुनगुनाते और पीछे से मेरी मां तुकें मिलाती और इन दोनों की चुहल में तुक्कड़ कवि बन कर मैं भी टपक पड़ी और मेरी पहली कविता -

मुझको बहुत हंसी है आती ,
जब बाबू जी कविता लिखते ,
अम्मा भी हैं तुकें मिलातीं ।
जब बाबू जी कहते स्वर में ,
' जीवन की हैं कितनी घड़ियां ,'
तब अम्मा जी कहतीं घर में ,
बाबूजी हैं नहीं लकड़ियां,
रोटी अपनी स्वयं बना लो ,
मैं भी कविता आज बनाती ।।

बन गई। इस कविता को पिता जी ने बार-बार सुना और बहुत सराहा। वे प्रेरणा देने लगे । मैं बड़ी होती गई और मेरी कविता भी लता बल्लरी की भांति मुझसे लिपटी पुष्पित पल्लवित होती फैलती चली गई। बचपन प्रेरणा से ही निखरता है । ऐसी अनेक घटनाएं घटित हुई जिन्होंने मेरे मन में यह विश्वास भर दिया कि मेरे जीवन का लक्ष्य कविता है । मेरा जन्म कविता के लिये ही हुआ है ।फिर क्या था , विद्यालय की अध्यापिकाओं पर , पिता जी के मित्रों और परिचितों पर जिन्हें मैं चाचाजी कहती थी , जीजा और भाभियों पर , वहां के निवासी डॉक्टरों पर , तहसीलदारों पर और न जाने ऐसे कितने जाने माने रिश्तों पर मैंने कविताएं लिखी कि मेरा एक कविता संग्रह 'विजय विनोद ' के नाम से तैयार हो गया।

इसके बाद काव्य प्रतिभा को देख कर पिता जी

के एक मित्र ने मुझे प्रेरणा दी कि मैं एक कविता रूसी भाई बहिनों के नाम दोस्ती का हाथ बढ़ाते हुये लिखूं । यह मेरे लिये चुनौती भी थी और मेरी परीक्षा भी । संकल्प करके कि बहुत अच्छी लिखूंगी , लिखने बैठ गई। मैंने तीस मिनट में सोलह छंद लिखे । अंतिम दो छंदों में दोस्ती का आग्रह देखिये -

बहिन कभी इस ओर पधारो ,
मुझको भी तुम कभी बुलाओ ,
बनते यहां मधुर रसगुल्ले,
मेरे साथ बैठ कर खाओ ।
देना बहिन पत्र का उत्तर ,
और भेजना कोई पुस्तक ,
मैं भी भाषा पढ़ूं तुम्हारी,
मिल न सकूं मैं तुमसे जब तक ।

पिताजी रचना सुनकर गदगद हो गये । उन्होंने इसे मेरे चित्र के साथ मास्को से प्रकाशित होने वाले पत्र 'पायोनेरस्कया प्रावदा ' में प्रकाशनार्थ भेज दिया।कविता वहां रूसी में अनूदित कर मेरे चित्र सहित प्रकाशित की गई जिसके उत्तर में मुझे बारह हज़ार पत्र, ढेरों उपहार, कैमरा और पुस्तकें प्राप्त हुईं । हम आश्चर्यचकित हुये यह देख कर कि वहां अखबार छात्र छात्राओं के बीच भी कितनी शिद्दत से पढ़े जाते हैं । मुझे पढ़ने के लिये रूस बुलाया गया परन्तु उन दिनो माता -पिता बेटियों की शिक्षा के प्रति इतने जागरूक नहीं थे कि उन्हें अकेला विदेश भेज देते । हां 'अपने देश में रह कर नाम कमाओ ' पिताजी का यह वाक्य मेरा रास्ता बनाता गया और इस घटना ने मुझे अपने लेखन के प्रति जिम्मेदार और ईमानदार बना दिया । मेरी तुकबंदियों में चिंतन प्रवेश कर गया। अब जो प्रथम चिंतन पूर्ण कविता लिखी - ' तन तो देखा रोज मुकुर में , मन का दर्पण मिला नहीं' मेरे प्रथम गीत संग्रह ' बूंद -बूंद मन ' की प्रथम रचना बनी और सराही गई। इसके बाद मैंने अखबारों में रचनाएं भेजना प्रारम्भ कर दिया । अखबारों ने मेरी रचनाओं का स्वागत किया और धड़ल्ले से छापना शुरू कर दिया । मेरी ढेरों रचनाएं नयी दुनिया, नवीन दुनिया ,भारत , दैनिक जागरण, म.प्र. संदेश , आंध्रप्रदेश, सरिता, सारिका, धर्मयुग, युग धर्म , जाह्नवी , सरस्वती , मंगल दीप आदि पत्रों में सादर प्रकाशित कीं । ये सभी पत्र पत्रिकाएं पारिश्रमिक देती थीं जिससे उत्साह भी दोगुना होता गया । एक घटना ने मुझे मंचो पर भी ख्याति दिलाई और निर्भीक बना दिया। पिताजी के एक कवि मित्र शरीर से इतने भारी भरकम थे कि वे हास्य रस के कवि से पहल ` स्वयं हास्य के पात्र माने जाते थे । वे मेरे घर आये और मुझसे बोले ' आ मौड़ी तोखां कविता सुनांव । मैं जाकर उनके निकट बैठ गई। उन्होंने कविता पढ़ी -

भगवान हमारी बात सुनौ ,
दो एक नहीं छै सात सुनौ ।

मेरे मुंह से निकल पड़ा ,' ये भी कोई कविता है । ऐसी तो मैं भी लिख सकती हूं। वे थोड़ा आक्रोश में आकर बोले , अच्छा जा , लिख कैं ला । देखों का लिखत है ।' मैं अन्दर गई, कापी पेन उठाया और लिखना शुरू कर दिया जैसे कुछ रटा रटाया लिख रही थी -

चतुरेश हमारी बात सुनो ,
दो एक नहीं छै सात सुनो ।
किस चक्की का पीसा खाते ,
इतने मोटे होते जाते ,
बने पुलिन्दा बिस्तर के हो ,
कौन तुम्हारी जात सुनो ।

फिर क्या था , जहां चतुरेश जी बुलाये जाते वहां मुझे अवश्य बुलाया जाता था । श्रोता चतुरेश जी को सुनने के बाद मेरा नाम पुकारने लगते थे । संचालक अपनी जगह पर आकर बैठ जाते थे और संचालन स्वयं श्रोता करने लगते थे । अब मैंने अंग्रेजी विषय में एम .ए . कर लिया था ।

...शेष पृष्ठ 2 पर

विजयलक्ष्मी विभा अंक

कविताएं

आँखों के आगे से गुजरा ,

आँखों के आगे से गुजरा ,
जब मेरा प्रिय गांव ,
हाय मैं कितना रोई ।
ऊँची-ऊँची पहाड़ियों की ,
लम्बी बड़ी कतारें ,
बेटी की अगवानी को थीं ,
सारे साज सवारें ,
छलक पड़ी प्रेमातुर नभ से ,
रिमझिम रिम बौछारें ,
स्वागत करने दौड़ पड़ी थीं ,
टेसू पगी बहारें ,
हाथ पसारे किये हुये थे ,
तरुवर शीतल छांव ,
हाय मैं कितना रोई ।
ज्यों-ज्यों दौड़ी गाड़ी मेरी ,
यूटिक्लिप्सिस भागे,
देते हुये संदेशा सा कुछ ,
दौड़ें आगे- आगे ,
पंक्ति बना सागौन दौड़ते ,
सबके सब थे जागे ,
लगा , अभी तक बँधे हुये हैं ,
वही प्रेम के धागे ,
दिखा अभी भी मेरी खातिर ,
वही अनूठा भाव ,
हाय मैं कितना रोई ।
दिखे शीघ्र कुछ झोपड़ झुग्गी ,
खँडहर लगे चिढ़ाने ,
आँखों ने टकटकी लगाई ,
कोई मुझे पहचाने ,
कार देख आये कुछ बच्चे ,
जिज्ञासा दर्शाने ,
तुम हो कौन , यहां क्यों आईं,
लगे प्रश्न दोहराने ,
तभी दिखा इक भाई धरम का ,
छुये दौड़ कर पांव ,
हाय मैं कितना रोई ।
लगा मुझे दौड़े आयेंगे ,
मेरे सखा सहेली ,
फिर खेलेगा बचपन मेरा ,
उनकी पकड़ हथेली ,
छिपा छिपउअल ,खो ,सतखिपड़ी ,
बनने लगे पहेली ,
दौड़ा-दौड़ा दृष्टि देखती ,
दिखी न कोई नवेली ,
लगा एक झटका सा सहसा ,
हुआ हृदय में घाव ,
हाय मैं कितना रोई ।
पहुंच गई फिर उस पड़ाव पर ,
दिखा जहाँ घर अपना ,
खेली कूदी पढ़ी जहां वह ,
बाबुल का प्रिय अँगना ,
दीवारों ने गले लगा कर ,
दे दी मुझे उलहना ,
किसको भाता बतला बेटी ,
सूनेपन में रहना ,
भाई हुआ परदेसी तेरा ,
मुझे कौन दे ठांव ,
हाय मैं कितना रोई ।

बसी दूर जा घर की लक्ष्मी

बसी दूर जा घर की लक्ष्मी ,
कौन करे रखवाली ,
एकाकी रह बिखर गया हूं ,
जीवन से हूं खाली ,
सुबक पड़ा वो अँगना बूढ़ा ,
मेरा बूढ़ा माली ,
मैं बिटिया बगिया बाबुल की ,
लगी स्वयं को गाली ,
बिछड़े सभी एक दूजे से ,
सब थे लिये तनाव ,
हाय मैं कितना रोई ।
कुटी द्वार पर बूढ़े काका ,
खटिया में थे पौढ़े ,
जाड़े की सिहरन में खुद को ,
गठरी सदृश सिकोड़े ,
देखा मुझे दूर से आते ,
हाथ उन्होंने जोड़े ,
जैसे कोई फिरंगी आया ,
चढ़ कर ऊँचे घोड़े ,
पार लगाने वाली जैसे ,
मैं थी उनकी नाव ,
हाय मैं कितना रोई ।

मन में व्यथा आँख में आँसू ,
असह्य दर्द छिपाये ,
बैठ गई मैं पुनः कार में ,
सपने सब भरमाये ,
मुझे लौटता लगे देखने ,
सब जन दृष्टि गड़ाये ,
कैसे रुकती वहां जहां थे ,
सब हो गये पराये ,
कन्या धन सी चली सदन से ,
पारित सा प्रस्ताव ,
हाय मैं कितना रोई ।

अंखियां पानी पानी ठ से एक पद

जब से कलयुग आन बिराजा ।
पाप,अधर्म,असत ने जग से , किया सहज ही साझा ।।
टूटे सारे रिश्ते नाते , कोई भाई न भांजा ।
हर कोई है प्रजा यहां पर , हर कोई है राजा ।।
कहां मिलेगा चैन तुझे मन , लगा तनिक अंदाजा ।
एक प्रभू का ही दिखता है , खुला सदा दरवाजा ।।
किसी रूप में देख उसे तू , राम बना या ख्वाजा ।
विभा बजाये एक नाम का , सदा एक ही बाजा ।।

तृषा का प्रवाह

तृप्ति हेतु भरती घट नीर से ,
बन जाता किन्तु वह अथाह,
बढ़ता है ऐसा प्रतिकूल हो ,
अनबूझी तृषा का प्रवाह ।
तृप्ति तो जगाती है नभ में आषाढ़,
तृषा बुला लेती है भूतलढ़ ,
दोनों ही जीवन के कूल हैं ,
दोनों को दोनों अवगाह ।
मुस्कानें खोदती कपोलों पे कूप ,
नयन नीर दे देता सिंधु का स्वरूप ,
आती हैं स्मृतियां जलयान बन
समझ इसे ही बन्दरगाह ।
विरह तो जगाता है मीठा अनुराग,
मिलन लगा देता पर तन मन में आग ,
चिंताएं आती हैं भूलवश ,
समझ यहां अपनी भी चाह ।
रचना तो होती है स्वप्न की अनूप ,
सत्य बना देता है उसको कुद्रूप ,
एक महिला देता रस सिंधु में,
एक लगा देता है दाह ।
सुख दुख की अपनी है आपस की बात ,
हर पथ में दोनों ही करते उत्पात ,
दोनों की लुक छिप हम झेलते ,
सुख को दुख , दुख को सुख ग्राह ।

पल भर मैं विश्राम करूं

मंज़िल दूर चूर हूं पथ में ,
कैसे पूर्ण विराम करूं ,
कोई तरु की छांह न जिसमें ,
पल भर मैं विश्राम करूं ।
नीचे कंटक झाड़ी झंखड़ ,
ऊपर जेठ मास की धूप ,
निकट न कोई निर्झर शीतल ,
दूर-दूर तक गांव न कूप ,
नीरवता में कल्पित भय से ,
एकाकी संग्राम करूं ।

कहीं न दिखता रैन बसेरा ,
नहीं पक्षियों के लघु नीड़ ,
सूने मन में आती दिखती ,
केवल शंकाओं की भीड़ ,
शंकित मन से निर्जन पथ पर ,
कैसे गति अविराम करूं ।

आगे बढ़ूं कि पीछे जाऊँ ,
पग हिलते तो चुभते शूल ,
हूं तो मन की नौका पर में ,
किन्तु न दिखते आगे कूल ,
नौका पर ही विवश विहग सी ,
निर्मित अपना धाम करूं ।

पराभूत जब हुई समय से ,
मन में आई सम्यक बात ,
पथ बन कर ही झेलू सब कुछ ,
मुझ पर ही दौड़ें दिन रात ,
पथिक नहीं मैं पथ बन कर ही ,
कृत्य एक उद्दाम करूं ।

पथ बन कर जब पड़ी यहां मैं ,
समय दौड़ने लगा अभीत ,
उसी बिन्दु पर हुआ थकित वह ,
जिस पर थी मेरी ही जीत ,
मेरे पग मंजिल को जाते ,
चाहे जहां लगाम करूँ ।

ग़ज़ल

एहसास की हदों से , पीड़ा गुज़र न जाये ,
घुट-घुट के जीने वाला , घुट-घुट के मर न जाये ।

पलकों से कोई आँसू , गिर कर बिखर न जाये ,
चढ़ती हुई नदी का , पानी उतर न जाये ।

दिल है कि झील कोई , पथरा के रह गई है ,
कोई लहर न आये , कोई लहर न जाये ।

उस पार से वो मुझको , आवाज़ दे रहा है ,
मारे खुशी के मेरी , धड़कन ठहर न जाये ।

कांटों पे उसने मुझको , चलना सिखा दिया है ,
फूलों में रहके मेरा , विश्वास मर न जाये ।

दरिया पे झिलमिलाये, किस शान से अकेला ,
लेकिन दिये के दिल से , लहरों का डर न जाये ।

दिल में उठे तो फौरन , आँधी का रुख बदल दो ,
उम्मीद के दिये को , बेनूर कर न जाये ।

सूली पे उसको पाना , फिर लौट के न आना ,
दुनिया जिसे हो प्यारी , उसकी डगर न जाये ।

पुल को विभा गिरा कर , वो भी उदास होगा ,
उसकी खबर न आये , मेरी खबर न जाये ।

जा बुंदेलखंड की भुइंया,

जा बुंदेलखंड की भुइंया,
कैसी नौनी लग रई गुंइयां।
मुर्गा बांग लगी भुंसारें ,
छिप गये नभ में तारे ,
अपने-अपने धंधा करवे,
निकर परे गैलारे ,
सुरू होत दिनचर्या जैसई ,
सूर्य करत घमछैंयां ।
खेतन-खेतन मौड़ा - मौड़ी ,
खेलत कौड़ा - कौड़ी ,
कोउ- कोउ सें झगड़ा कर रये ,
कोउ बना रहे जोड़ी ,
काटत धान निहारत अम्मा ,
हंस-हंस लेत बलैंयां ।
ऋतुएं ईके पांव पखारें ,
सेखी इतै बघारें ,
छिन-छिन बदलें हुलिया अपनी ,
पल-पल भेद उघारें ,
कबहुं बहावें नदियां नाले,
कबहुं सुखावें कुइयां ।
कबहुं गगरिया भर रयिं कोरी ,
कहूं लीप रयिं गोरी ,
कहूं खेल रयिं चार चपेटा ,
पी संग चोरी -चोरी ,
कहूं पौंर में घुंघटा काढ़ें ,
धना दूह रयीं गैयां ।
सज कें झूमर ,झुमका बैंदी ,
हाथ रचा कें मैंदी ,
निकर परीं सखियां लै झोरा ,
बेर झोरवे पैंदी ,
दै दै ताली करें ठिठोली ,
मार -मार किलकैंया ।
मोरें नाचें झींगुर गावें ,
मैंढक नित टर्रावें ,
पिंजरा के सुअना गोरी सें
जानें का बतियावें ,
कानाफूसी कर आपस में ,
चहकें चूनें चिरैंयां ।
इतै भये वे राजा रानी ,
जिनकी नैंया सानी ,
इनके साही रजबाइन की ,
चारन कहत कहानी ,
ऊंचे-ऊंचे किले झुकतते ,
परवे इनकी पैंया ।

ग़ज़ल

इस सदी के लोग इनसे तस्करी करने लगे हैं ,
इन खिलौनों से मेरे बच्चे बहुत डरने लगे हैं ।

बेटी की हमशक्ल गुड़िया पर तरस इनको न आता ,
उसमें भी बारूद के गोले व बम भरने लगे हैं ।

आँधियों में शाख से पत्ते गिरा करते हैं जैसे ,
हादसों से लोग सड़कों पर यहां मरने लगे हैं ।

देखिये पर्यावरण का भी संरक्षण हो रहा है ,
घास के बदले मवेशी प्लास्टिक चरने लगे हैं ।

हो ज़मी पर सुख या दुख इनकी उड़ानों की न पूछो ,
रफ्ता- रफ्ता चांद पर भी पाँव ये धरने लगे हैं ।

ग़ज़ल

कल्पनाओं में जीवन बिताना नहीं ,
घर हवाओं पे अपना बनाना नहीं ।

हौसले ज़ालिमों के बढ़ाना नहीं ,
चोट खाकर कभी तिलमिलाना नहीं ।

चंद अपनों ने जो भी किया छोड़िये ,
वरना दुश्मन तो सारा ज़माना नहीं ।

सांझ से दुख के पंछी पलट आये फिर ,
दूसरा जैसे इनका ठिकाना नहीं ।

एक नन्हा सा दीपक जला है अभी ,
ऐ हवाओ अभी सनसनाना नहीं ।

तुम निराशा के शोलों में घिर जाओगे ,
दोस्तों को कभी आज़माना नहीं ।

हंसने वालों को मौका न देना कभी ,
अपने ग़म को तमाशा बनाना नहीं ।

अपने प्राणों की चिन्ता न करना विभा ,
ज़ुल्म के सामने सर झुकाना नहीं ।

ग़ज़ल

रीतती है उम्र की गागरी घड़ी घड़ी ,
बीतती है आप ही ज़िंदगी घड़ी घड़ी ।

वो वजूद जल का था मिल गया जो सिंधु में ,
बह रही है पर नदी आज भी घड़ी घड़ी ।

ख्वाब जो दिखा रही है अभी नई नई ,
कल को गुल खिलायेगी ये सदी घड़ी घड़ी ।

पल को गर खुशी मिले ज़िंदगी संवार ले ,
फिर न आयेगी विभा ये घड़ी घड़ी घड़ी ।

कोहनूर सी तेरी ला ग़ज़ल तराश दूं ,
आयेगा न द्वार पर जौहरी घड़ी घड़ी ।

मौसम के रूठने की खबर अजनवी न थी ,

मौसम के रूठने की खबर अजनवी न थी ,
लेकिन फ़िज़ां में इसकी कहीं सनसनी न थी ।

उपवन उजाड़ के वो मेरा क्यों चली गईं ,
मेरी तो आँधियों से कोई दुश्मनी न थी ।

बेमानी हो गये थे मदारी के करिश्मे ,
चेहरों पे नन्हे मुन्नों के आई हँसी न थी ।

आई थी इक बहार मेरी बन के हमसफ़र ,
ये ख्वाब था हसीन मेरी ज़िंदगी न थी ।

ये नूर था खुदा का मैं उस दर पहुंच गई ,
जिस दर से इस जहां में विभा वापसी न थी ।

ड13/07, 9:37 ज्र्ईंः ग़ज़ल

राख के ढेर में जलता हुआ अंगारा है ,
कोई धोखे में न रहना कि वो बेचारा है ।

इन वुज़ुर्गों का खुदा जाने कि कल क्या होगा ,
बेटों के बीच में मां - बाप का बँटवारा है ।

सारी दुनिया की खुशी मिल गई उसको देखो ,
बच्चे के हाथ में उड़ता हुआ गुब्बारा है ।

सींच ले सूख न जाये तेरे ज़ुल्मों का चमन ,
मेरे अश्कों का तेरे हाथ में फव्वारा है ।

दीप अपने ही पड़ोसी का बुझा कर खुश है ,
देख मुड़ के तेरा घर भी हुआ अँधियारा है ।

ख्वाब आते रहे ख्वाब जाते रहे ,

ख्वाब आते रहे ख्वाब जाते रहे ,
आइना ज़िंदगी को दिखाते रहे ।

एक झोंका हवा का उड़ा ले गया ,
और हम ताश का घर बनाते रहे ।

पृष्ठ १ का शेष

आत्म कथ्य...

अध्ययन के साथ -साथ साहित्य सर्जन एक अनिवार्य विषय की तरह कैरियर में शामिल हो गया था । अब आकाशवाणी भोपाल मध्य प्रदेश ने भी मुझे कविताओं और गीतों के प्रसारण का सुअवसर दिया। सुगम संगीत में मेरे रचे गीत भोपाल के कलाकारों ने बड़े प्रेम से गाये और वे बहुत सराहे गये । उनका प्रसारण भी बार-बार होने लगा । गीतों की लोकप्रियता बढ़ती गई और मैंने पचास गीत आकाशवाणी को दिये जिनका प्रसारण निरन्तर होता रहा। वहां के म्यूजिक प्रोड्यूसर स्व.रमेश नाडकर्णि मुझे पत्र लिख कर गीत भेजने का आग्रह करते थे ।
ग्राम अजयगढ़ में मेरी लोकप्रियता बढ़ती गई और मुझे ' प्रोजेक्ट इम्प्लीमेंट कमेटी' का चेयर पर्सन बना दिया गया। उसी वर्ष संस्था का नाम परिवार एवं बाल कल्याण परियोजना कर दिया गया । इस संस्था में रह कर मैंने समाज सेवा के अनेक कार्य किये । अजयगढ़ की जनता ने प्रभावित होकर मुझे जनपद पंचायत के चुनाव में खड़ा करा दिया । मैं चुनाव जीत गयी और जनपद पंचायत के समाज कल्याण विभाग की अध्यक्ष बना दी गई ।अब सामाजिक कार्यों के लिये पर्याप्त साधन थे और जिम्मेदारियां भी बढ़ गई थीं । समाज सेवा के कायों का विवरण दूं तो ल `ख का कलेवर बहुत बढ़ जायेगा।
तत्पश्चात विवाह हुआ और मैं प्रयागराज आ गई। यहां जीवन के कड़ुवे मीठे अनुभवों ने यथार्थ के दर्शन कराये और लेखन में चिंतन और गम्भीरता का प्रवेश हुआ। जीवन अपने आप में एक कहानी सा लगने ल गा और सचमुच मैंने कहानियां लिखना शुरू किया। साहित्य जगत में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान तो विवाह से पूर्व ही बन चुका था ।
अब तक लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य कर चुकी थी और कर रही हूं। मेरे सत्तर वर्षीय साहित्यिक सफर में मैंने क्या - क्या देखा , क्या लिखा , क्या छूटा और अभी क्या रह गया है देखने को , लिखने को , अनुभूतियों में समेटने को , सब समय के पास धरोहर रूप में है । आपकी दुआएं रहीं तो धीरे-धीरे समय उन्हें भी सोंपता जायेगा मेरे हाथों में और मैं सोंपूंगी आपको । मेरी पुस्तकें आग्रह करेगीं - तुम पढ़ो हमें या ठुकराओ , हम तो हैं तुम्हारे हाथों में ।

विजयलक्ष्मी विभा
साहित्य सदन ,
149 जी / 2 , चकिया -प्रयागराज -211016

साप्ताहिक शहर समता

विजयलक्ष्मी विभा अंक

कविताएं

उसके आने की कोई ख़बर तो न थी ,
फिर भी हम द्वार आँगन सजाते रहे ।

तुमने माचिस जलाई महज खेल में ,
आग जब लग गई छटपटाते रहे ।

उनको जाना कहां है नहीं जानते ,
मंज़िलें दूसरों को बताते रहे ।

कब घटा कब बढ़ा कब गुणित हो गया ,
हम हिसाब अपने ग़म का लगाते रहे ।

मंज़िल मिली मरण को

पथ पर जीवन चला सदा , पर ,
मंज़िल मिली मरण को ,
मार्ग थका बोझिल हो लेकिन ,
गौरव मिला चरण को ।
मैंने अपना रूप सँवारा ,
हर आभूषण तन पर धारा ,
सूरज चाँद लगाये मुख पर ,
तोड़ा नभ का तारा-तारा,
पर मेरी छवि रही अचर्चित ,
ख्याति मिली दर्पण को ।
मैंने मरु को जोता बोया ,
स्वेद सलिल से कण-कण धोया ,
मन में भर-भर आतप लाई ,
आखों में भर श्रावण ढोया ,
सींच-सींच मैं हारी लेकिन ,
प्यार मिला उपवन को ।
मैने सारा नेह पिलाया ,
ज्योति मिला कर दीप जलाया ,
जो भूला उसको भी मैंने ,
खोये पथ से सदा मिलाया ,
मैं भटकी तम हरते लेकिन ,
सब आभार किरण को ।
मैंने जब स्पन्दन जोड़े ,
कुछ अभाव कुछ भाव बिलोड़े ,
गीत लिखे जीवन के अपने ,
और मरण के बंधन तोड़े ,
तब मेरा 'दिन ' बना एक पर ,
श्रेय मिला लघु क्षण को ।
यह जगती उलटी ही जाती ,
पल-पल अपना मार्ग बनाती ,
मेरे बोल न मिलते इससे ,
जाने कौन राग यह गाती ,
मन को सौंपा यह तन मैंने ,
तन न मिला पर मन को ।

जीवन के संग्राम बहुत हैं

द्वन्द्व करूं क्या अधम मृत्यु से ,
जीवन के संग्राम बहुत हैं ।
क्षण- क्षण आते आँधी पानी ,
पल-पल उठते यहां बवंडर ,
चाहों की उपजाऊ बगिया ,
बनती रेगिस्तानी बंजर ,
कितने सपने आतप देंगे ,
एक सूर्य के घाम बहुत है ।
लड़ते लड़ते चली यहां तक ,
लड़ते- लड़ते आगे जाना ,
समझ लिया मैंने , है जीवन ,
संघर्षों का ताना - बाना ,
तानों - बानों की दुनिया के ,
विस्तृत ये आयाम बहुत हैं ।
जब न रोकते रुकतीं मुझसे ,
मेरी ही आँखों की नदियां ,
बहतीं ये प्रवाह में अपने ,
बांध बांधते जाती सदियां ,
उस प्रवाह से बचने को ये ,
सांसों के व्यायाम बहुत हैं ।
अविजित छोड़ द्वन्द्व जीवन के ,
जो दुनिया उस पार भागती ,
उसे पता क्या हो रहस्य का ,
दिन में सोती रात जागती ,
क्या देखूं परलोक मुझे तो ,
इसी लोक के काम बहुत हैं ।
मुझे नहीं निर्बाण चाहिये ,
और न जग से त्राण चाहिये ,
आती रहूं सदा इस भव में ,
पुनः यही निर्माण चाहिये ,
जीवन रण में मिलें मुझे जो ,
उतने ही उप नाम बहुत हैं ।

गीत

आज देख लो वर्षा में , सतरंगी इन्द्र धनुष ,
वर्ना सब दिन तो तपती किरणों का शासन है ।
माना बड़ा दर्द देते हैं ,
आने वाले दौर ,
ये भी ढूंढ़ रहे हैं लगता ,
यहीं कहीं पर ठौर ,
उठी हुई आँधी को अपने रस्ते जाने दो ,
सब दिन तो इस उपवन में , सुमनों का शासन है ।
मृग तृष्णा में भाग रहे जो ,
करते नित्य कुकर्म ,
काली पट्टी बांध दृगों में ,
बने हुये बेशर्म ,
आज हक़ीकत खुलने दो , रंगीन मुखौटौं की ,
सब दिन तो इनआँखों पर , सपनों का शासन है ।
चारों ओर घृणा के बादल ,
गर्जन करते घोर ,
कोई नहीं किसी का जग में ,
करते ऐसा शोर ,
कोई ग़ैर बने यदि अपना , तो बन जाने दो ,
यों तो पूरे जीवन पर , अपनों का शासन है ।
सुख दुख की ही धूप छांव में ,
कटे बहुत पल छिन ,
हंसते रोते बीत गये हैं ,
जाने कितने दिन ,
आज लिखा यह गीत मौज़ में , जीवन जी जीकर ,
यों तो मेरे मन पर बस , भजनों का शासन है ।

मृदु थपकी

जब-जब रोया मन शिशु मैंने ,
दी प्रलोभनों की मृदु थपकी ।
क्यों रोता रे पागल , जग में
कितने तेरे देख खिलौने ,
सूरज चांद सितारे फैले ,
गिरि गह्वर वन कोने-कोने,
भाया तुझे न कोई तेरी ,
आँखें नित अदृष्ट पर लपकी ।

चाहे जिसको तोड़ फोड़ रे ,
चाहे जिसमें खेल अनाड़ी ,
चाहे जहां पहुंच जा चढ़ कर ,
पवन वेग की तेरी गाड़ी ,
किन्तु दृगों से तेरे अविरत ,
जब देखा तब बूंटें टपकीं ।

कभी उसे फुसलाया कह कर ,
चपल भाग्य को मैं डांटूंगी ,
छेड़ेगा जो फिर वह तुझको ,
उसके दोनों पर काटूंगी ,
व्यर्थ हुईं पर सभी लोरियाँ ,
क्षण को उसे न आई झपकी ।

सारे खेल खिलाये मैंने ,
जीवन भर मन को दुलराया ,
प्रौढ़ हुआ तो उसे ग्यान की ,
बातों से निशदिन समझाया ,
बना मुझे ही स्वयं खिलौना ,
खेला , जब की बातें तप की ।

मैं ही हारी चंचल मन से ,
उसे न वसीभूत कर पाई ,
उसके ही आँचल में शिशुवत ,
सोई जागी ले अँगड़ाई ,
हुये प्रलोभन सारे निष्क्रिय ,
मन के सँग मैं रोई फफकी ।

अपना कोई नहीं बहाना

रोज रात का आना जाना ,
रोज सबेरे का इठलाना ,
लगता है ये दोनों ही हैं ,
इस जीवन का ताना-बाना ।
एक पूर्व से पश्चिम तक है ,
और एक उत्तर से दक्षिण ,
सभी बंधे हैं इन धागों से ,
नहीं कोई इनसे है उऋण ,
सांस- सांस से गूंजा करता ,
इनका राग इन्हीं का गाना ।

इन तानों बानों में होती ,
रोज-रोज कुछ खींचा तानी ,
नहीं दिशाएँ थकतीं करते ,
इनके सँग अपनी मनमानी ,
जीर्ण शीर्ण से होते खिंचकर ,
भरते हम रोकर हरजाना ।

इनके सँग है जीना मरना ,
इनके संग सुख-दुख की परिणति ,
इनकी टिक-टिक पर है दुनिया ,
इनकी टिक पर है जीवन गति ,
इनके आगे चलता जग में ,
अपना कोई नहीं बहाना ।

अंखियां पानी पानी से एक पद

प्रीत न कर मुझ बंजारन से ।
एक दिवस तो जाना ही है ,
जग रे तेरे घर आंगन से ।।
कब तक बांधेगा तू मुझको,
माया के झूठे बंधन से ।
मैं हूं पवन फिसल जाऊंगी ,
तेरे मोह लसित दामन से ।।
तू है पिता न माता मेरा ,
क्या रिश्ता मेरे तन-मन से ।
तू ही बतला क्या पाता है ,
तू मेरे मृण्मय जीवन से।।
तुझसे छिप कर झांक रहे हैं ,
मेरे प्रभु तेरे कण कण से।
नहीं रुकेगी विभा दिवानी ,
रे जग तेरे किसी जतन से ।।

पद -2

हरि ने पीर न मेरी हरी ।
मुक्ति न दी न दिये दर्शन ही , रह गई चाह धरी ।।
उसके नाम की जनम - जनम से , सिर पर गगर धरी ।
ऐसे निष्ठुर हुये कि हरि ने , बूंद न एक भरी ।।
जंगल-जंगल फिरी खोजती , संकट से न डरी ।
एक नाम का दिया जलाती , हर दुख से उबरी ।।
लेकिन रही सदा ही प्यासी , भव सागर न तरी ।
विभा दिवानी अब तक प्रभु के , दर्शन बिन न मरी ।।

तीसरा -पद

क्यों भटके रे पागल मन ।
मृगतृष्णा तुझको भरमाये ,
व्यर्थ न कर जीवन ।।
झूठे सपनों की छलना में ,
क्यों हो रहा मगन ।
बाजारों की चमक दमक में ,
उलझ न जांय नयन ।।
माया की नगरी में तेरा ,
कोई नहीं स्वजन ।
नहीं जायेगा संग में कोई, छोड़ेगा जब तन ।।
काम न आये सिवा ज्ञान के , विभा जगत का धन ।
सच्चे मालिक के चरणों का , कर तू नित्य भजन ।।

शहर समता - ब्यूरो प्रमुख

देहरादून ब्यूरो - निशा अतुल्य,
सतना ब्यूरो - डॉ ऊषा सक्सेना,
रीवां ब्यूरो - साधना तिवारी,
लखनऊ ब्यूरो - मंजु सक्सेना,
जबलपुर ब्यूरो - शैली सेठ,
लुधियाना ब्यूरो - श्रद्धा शुक्ला,
जौनपुर ब्यूरो - डॉ मधु पाठक,
हैदराबाद ब्यूरो -रीना प्रदीप कुमार,
भिलाई ब्यूरो - संध्या चंदेल,
गोरखपुर ब्यूरो - चित्रा श्रीवास्तव,
दिल्ली ब्यूरो - अफरोज़ अजीज,
तिनसुकिया गोलाघाट ब्यूरो - रंजना बिनानी,
प्रयागराज ब्यूरो - डॉ आकांक्षा पाल,
भीलवाड़ा ब्यूरो - डॉ राजमति पोखरना,
इंदौर ब्यूरो - आशा जाकड़,
शिलांग ब्यूरो - डॉ अनीता पंडा,
बिलासपुर ब्यूरो - स्मृति मिश्रा 'रीति,
रायपुर ब्यूरो - सीमा निगम,
कानपुर ब्यूरो - सीमा वर्णिका,
भोपाल ब्यूरो - दीपमाला तिवारी,
दमोह ब्यूरो- भावना शिवहरे,
मण्डला ब्यूरो - डॉ अर्चना जैन
बनारस ब्यूरो - सुनीता जौहरी,
आरा ब्यूरो - सिम्पल सिंह,
बिजनौर ब्यूरो - ऋतुबाला रस्तोगी,
पठानकोट ब्यूरो - क्षमा लाल गुप्ता,
सप्तरी नेपाल ब्यूरो - करुणा झा,
धम्तरी ब्यूरो - कामिनी कौशिक,
रामपुर ब्यूरो - चंद्रिका कुमार 'चांदनी',,
मुरादाबाद ब्यूरो - अभिव्यक्ति सिन्हा,
कटनी ब्यूरो - मीरा भार्गव,
पटना ब्यूरो - अंजू भारती

बचपन में ही पढ़ लिया ककहरा साहित्य का

डॉ० प्रदीप चित्रांशी

टीकमगढ़,मध्यप्रदेश में कवि, उपन्यासकार,नाटककार, चित्रकार एवं चिंतक अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' की गोद में जिस कन्या ने आँख खोलते ही साहित्य का ककहरा पढ़ना शुरू कर दिया था, उस कन्या का नाम पिता ने विजयलक्ष्मी रखा क्योंकि कहा जाता है, 'पूत के पाँव पालने में दिख जाते हैं।' बालिका विजयलक्ष्मी ने पिता की गोद में ही खेलते-खेलते जाना कि साहित्य वह साधना है जिसमें कवि अपने भीतर के भावों और विचारों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास करता है। इस साधना में धैर्य, लगन और निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है लेकिन बालिका विजयलक्ष्मी को यह पता नहीं था कि इन भारी भरकम शब्दों को कैसे आत्मसात करे।यह सत्य है कि माँ सरस्वती का आशीर्वाद जिस पर होता है, उसे इन दुरुह शब्दों का अर्थ माँ स्वतः समझा देती है।बालिका विजयलक्ष्मी घर में पड़े झूले पर झूलते हुए पिता के गीत को गुनगुनाया करती थीं, वही गुनगुनाना ही उनके अंतस में छन्द-बीज बोने में सहायक बना। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि विजयलक्ष्मी उस समय ग्यारह-बारह वर्ष की थीं, दिव्य जी के साथ उनके साहित्यिक मित्र किसी अधूरे गीत पर चर्चा कर रहे थे क्योंकि गीत की एक पंक्ति उन लोगों को खटक रही थी। विजयलक्ष्मी ने कहा कि वह पूरी कर सकती हैं। बच्ची की बात सुनकर सब हँस पड़े लेकिन विजयलक्ष्मी अपने कमरे में गईं और थोड़ी देर बाद गीत को पूरा करके पिता जी के पास पहुँची। गीत पढ़ते ही सब वाह वाह कर उठे।गीत और उसके भाव की गहराई को देखकर सबने बहुत आशीर्वाद दिया कि माँ की कृपा सदैव बनी रहे। इस गीत को सुधारने के बाद वह निरन्तर कविता लिखने लगीं तथा घर में आयोजित काव्य-गोष्ठियों में कविता पढ़ने लगीं लेकिन बड़े काव्य-मंच पर कविता पढ़ने का अवसर मिल नहीं रहा था। मंच पर भी जाने का अवसर उनकी एक स्कूली शरारत ने दिया। बात उन दिनों की है जब वह इण्टरमीडिएट में पढ़ रही थीं। इतिहास की कक्षा चल रही थी। शिक्षिका पढ़ा रही थीं लेकिन विजयलक्ष्मी उस कक्षा में होकर भी कक्षा में नहीं थीं। जब शिक्षिका पढ़ा रही थीं, उस समय वह कविता लिखने में व्यस्त थीं। शिक्षिका उनकी इस उदण्डता पर डाँट लगाते हुए, उन्हें प्रधानाचार्या के पास ले गईं। प्रधानाचार्या के पूछने पर विजयलक्ष्मी ने डरते-डरते सबकुछ बता दिया। प्रधानाचार्य ने कविता सुनाने के लिए कहा। उन्होंने जो कविता सुनाई, उसके कुछ अंश–

कविता मेरी ऊट पटांग है ,
कहीं राइट है कहीं रांग है ।
कहीं बनी वह प्रिंसीपल है ,
जो अंग्रेजी हमें पढ़ातीं,
कैसा है बैकवर्ड एरिया ,
जब कब ऐसी डांट लगातीं,
समझा पातीं कभी न ग्रामर ,
कहीं शार्ट है कहीं लांग है
कहीं बनी वह बोस बहिन जी,
जिनका रहता जोश निराला ,
है कालेज समस्या उन पर ,
जिसका है अफसोस निराला ,
हिस्ट्री बनी उन्हें है मिस्ट्री,
समझ न आता ह्वेनसांग है ।

इस कविता को सुनने के बाद प्रधानाचार्या ने उन्हें दण्ड देने की बजाय शहर की साहित्यिक संस्था द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन में कविता-पाठ करने हेतु प्रवेश दिलवा दिया। इस कार्यक्रम में शहर और शहर के बाहर के कई वरिष्ठ कवियों ने शिरकत की थी। यहीं से काव्य- मचों पर विजयलक्ष्मी को कवयित्री विजयलक्ष्मी'विभा' के नाम से नई पहचान मिली। काव्य- मंच से घर आने के बाद, पिता के आशीर्वाद से उनका मन बाग बाग हो उठा। उन्होंने पिता को ही गुरु मानकर उन्हीं की छत्रछाया में क़लम को धार देने का प्रयत्न करने लगीं साथ ही साथ स्कूली शिक्षा को भी पूरा करने में लगी रहीं।

शादी के बाद पति के साथ इलाहाबाद (प्रयागराज) आ गईं। इलाहाबाद आने के बाद पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करने के साथ-साथ समयाभाव होने पर भी साहित्य के प्रति,प्रीत में कोई कमी नहीं आई। अध्ययन करना और लिखना जारी रहा। गीत, ग़ज़ल, बाल कविता,खण्ड काव्य,कहानी, बाल कहानी, एकाकी नाटक आदिक उनकी क़लम बहुत ही करीने से लिख रही थी,जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण तत्कालीन पत्रिकायें एवं समाचार पत्र रहे। साहित्यिक घराने की होने के कारण आपका साहित्य जीवन के यथार्थ अंश, खण्ड, प्रश्न, क्षण, विचार या अनुभूति को गहनता के साथ व्यंजित करता है, जिसमे अनुभूति की तीव्रता और भावना का प्राबल्य रहा है। आपकी जिस बहु चर्चित आध्यात्मिक पुस्तक पर शोध कार्य हुआ है उसका नाम है 'अंखिया पानी पानी'। इस पुस्तक में संकलित पद मनुष्य को आत्म-ज्ञान और आत्म साक्षात्कार की ओर प्रेरित करते हैं। इस पुस्तक के कुछ पद–

प्रीत न कर मुझ बंजारन से ।
एक दिवस तो जाना ही है , जग रे तेरे घर आंगन से ।।
कब तक बांधेगा तू मुझको, माया के झूठे बंधन से ।
मैं हूं पवन फिसल जाऊंगी , तेरे मोह लसित दामन से ।।
तू है पिता न माता मेरा , क्या रिश्ता मेरे तन-मन से ।
तू ही बतला क्या पाता है , तू मेरे मृण्मय जीवन से।।
तुझसे छिप कर झांक रहे हैं , मेरे प्रभु तेरे कण कण से।
नहीं रुकेगी विभा दिवानी , रे जग तेरे किसी जतन से ।।

हरि ने पीर न मेरी हरी ।
मुक्ति न दी न दिये दर्शन ही , रह गई चाह धरी ।।
उसके नाम की जनम - जनम से , सिर पर गगर धरी ।
ऐसे निष्ठुर हुये कि हरि ने , बूंद न एक भरी ।।
जंगल-जंगल फिरी खोजती , संकट से न डरी ।
एक नाम का दिया जलाती , हर दुख से उबरी ।।
लेकिन रही सदा ही प्यासी , भव सागर न तरी ।
विभा दिवानी अब तक प्रभु के , दर्शन बिन न मरी ।।

क्यों भटके रे पागल मन ।
मृगतृष्णा तुझको भरमाये , व्यर्थ न कर जीवन ।।
झूठे सपनों की छलना में , क्यों हो रहा मगन ।
बाजारों की चमक दमक में , उलझ न जांय नयन ।।
माया की नगरी में तेरा , कोई नहीं स्वजन ।
नहीं जायेगा संग में कोई, छोड़ेगा जब तन ।।
काम न आये सिवा ज्ञान के , विभा जगत का धन ।
सच्चे मालिक के चरणों का , कर तू नित्य भजन ।।

उमरिया प्यासा छोड़ गयी ।
दरस कराये बिना प्रभू के , नाता तोड़ गयी ।।
मैं डूबी थी प्रेम सिंधु में , उसे बिलोड़ गयी ।
स्थिर जल में थी जो प्रतिमा , पल में बोड़ गयी ।।
आधी भरी प्रीत जल से थी , गागर फोड़ गयी ।
जीवन भर के लिये दर्द से , रिश्ता जोड़ गयी ।।
शैशव , बचपन ,यौवन वय से , वो मुख मोड़ गयी ।
न प्रभु मिले न तप फल पाया , प्राण निचोड़ गयी ।।
छली ज़िंदगी लगा विभा से , ऐसी होड़ गयी ।
प्रेम दिवानी का अति पावन , हृदय झिंझोड़ गयी ।।

जीवन के लगभग पचहत्तर वसन्त देखने के बाद कबीर की शिक्षा को आत्मसात करते हुए अपने पद के माध्यम से समझाने का प्रयास करती हैं कि जीवन को सहजता के साथ जीना है तो मृत्यु के रहस्यों को समझने का प्रयत्न करना अति आवश्यक है।।

लूकरगंज, प्रयागराज

संस्थापक
स्व0 कन्हैया लाल, स्व0 साधना श्रीवास्तव
सम्पादक
उमेश चन्द्र श्रीवास्तव
आरएनआई नं0 UPHIN/2001/3996
उप संपादक
डा0 अरूण कुमार मिश्रा
रचना सक्सेना
Mo. 9005239332
Email-shaharsamta@gmail.com
स्वत्वाधिकारी/मुद्रक/प्रकाशक/सम्पादक उमेश चन्द्र श्रीवास्तव द्वारा इण्डियन प्रेस (पलि.) प्रा0लि0, 36 पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित कराकर 289/238ए, (अनन्त भवन) कर्नलगंज, इलाहाबाद से प्रकाशित।
इस अंक के प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी तथा समस्त विवादों का निपटारा इलाहाबाद न्यायालय में ही होगा।

विजयलक्ष्मी विभा अंक

साप्ताहिक शहर समता

विजयलक्ष्मी विभा कहानी

मिलीभगत

लो बुंदेलखंड एक्सप्रेस आ गई।'
उठो , जल्दी करो । तुम बैग ले लो , मैं सूटकेस उठाता हूं ।
अच्छा ।
मुन्ने का हाथ न छोड़ना ।
हूं ।
चलो , इसी डिब्बे में चढ़ जाओ । जल्दी करो । बहुत भीड़ है ।
चढ़ जाओ , फिर जगह मिल जायेगी ।'
' ऐसी ही विभिन्न प्रकार की ध्वनियों से प्लेटफार्म गूंज उठा ।धक्कम धुक्की , भाग दौड़ , सामान की उठा पटक और कहीं - कहीं होते गाली गलौच से सारा वातावरण शोरगुल से भर गया । लाल पोशाक में सुसज्जित कुली किसी का सामान गाड़ी से नीचे उतारते किसी का ऊपर चढ़ाते , किसी से पैसों का हिसाब करते , और किसी से कम पैसे मिलने पर बहस करते इधर से उधर भागने लगे । यात्रियों की उद्देश्य पूर्ण चुहल हर एक की अपनी दृष्टि में निरुद्देश्य , अनावश्यक और महत्वहीन थी इसीलिए हर एक दूसरे को पीछे धकेल कर स्वयं स्थान ग्रहण करने के प्रयत्न में दिखाई पड़ता था । भीड़ का अनवरत प्रवाह किसी ट न की गति से कम नहीं था । '
' मैं अपने डेढ़ वर्ष के बच्चे को गोद में लिये हुये अपने पति के आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने सामान चढ़ाने से पहले मुझे आवाज़ दी । 'आओ शोभना तुम चढ़ जाओ फिर मैं सामान चढ़ाता हूं। ' वे कम्पार्टमेन्ट का द्वार थाम कर मेरे चढ़ने के लिये जगह बना कर खड़े थे । मैं आगे बढ़ी । एक हाथ में बच्चे को थामे हुये और दूसरे हाथ से छै वर्षीय लाली का हाथ पकड़े हुये मैं उस कम्पार्टमेन्ट में घुस गई। बैठने के लिये कोई स्थान न पाकर मैं खड़ी रही तब तक मेरे पति सुभाष भी सामान सहित अन्दर आ गए । उन्होंने सूटकेस को एक बर्थ के नीचे ढकेल दिया और थोड़ी जगह देख कर बैग और अटैची को ऊपर चढ़ा दिया । फिर वे बैठने के लिये जगह तलाशने लगे । मैंने देखा सामने के दोनों बर्थ पर दो व्यक्ति आराम से पैर फैलाये लेटे हुये थे । एक बर्थ पर एक सज्जन पैरों को चादर से आधा ढके हुये लेटे थे और दूसरे पर सर से पैर तक चादर ताने हुये दूसरे महाशय फैले हुये थे । शायद उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं था कि जनरल कम्पार्टमेन्ट में इस तरह लेट कर यात्रा करना नियम के प्रतिकूल है या शायद उन्हें अपनी दादागिरी पर इतना भरोसा था कि कोई भी दूसरा यात्री उनसे जगह मांगने का साहस नहीं करेगा ।
सुभाष ने वृद्ध से सांकेतिक आग्रह किया कि वे थोड़ा सा पैर सिकोड़ लें तो वे लाली को लेकर बैठ जाय । वे महाशय सामान्य जनों से कुछ अधिक सभ्य , सुशिक्षित एवं भले लग रहे थे । उन्होंने तुरन्त पैर सिकोड़ कर अपने आराम का साझा स्वीकार कर लिया। सुभाष और लाली उनके पैताने बैठ गये । मैंने सामने वाल ` बर्थ पर लेटे हुवे व्यक्ति के पैरों के नीचे थोड़ी सी जगह बना ली और अपने बच्चे को गोद में लेकर तिरछी बैठ गई। गाड़ी ने रेंगना शुरू कर दिया। मैं बांदा स्टेशन से प्रयाग के लिये रवाना हुई थी । मायके से ससुराल जा रही थी । मन कुछ बुझा-बुझा सा था जैसा कि ससुराल जाते समय प्रायः सभी लड़कियों का होता है। कुछ मीठी कुछ कड़वी स्मृतियां और अतीत वर्तमान और भविष्य के पारस्परिक टकरावों को झेलती सुलझाती भी ट न के साथ रेंगी फिर पूर्ण गति से भागने लगी । अचानक पार्श्व में लेटे उस चादर पोश ने अंगड़ाई ली और पूरे जोर से पैर फैला दिए। मैं धक्का लगते ही तिलमिला उठी परन्तु उस व्यक्ति के निद्रा में डूबे होने के ख्याल से मैंने झल्लाने की अपेक्षा और विनम्र होते हुये कहा-
भाई साहब! थोड़ा पैर सिकोड़ लीजिए । मेरे बच्चे को कष्ट हो रहा है । परन्तु उस व्यक्तिके चादर पढ़ें तन पर कोई हरकत नहीं हुई ।वह ज्यों का त्यों पैर सटाये ल `टा रहा जैसे उसने कुछ सुना ही न हो । अब मुझे क्रोध आ रहा था परन्तु बुजुर्गों के बनायें नियम की मर्यादा को कायम रखते हुवे मैंने उसे तीन बार क्षमा करने का निश्चय किया और फिर उसी विनम्रता के लहजे में अपना वाक्य दोहरा दिया ।' भाई साहब! थोड़ा पैर सिकोड़ लीजिए। मुझे परेशानी हो रही है। '
इस बार उसने करवट बदलने का अभिनय किया और पैर सिकोड़ कर इंच भर जगह मेरे लिये छोड़ दी । मैं जैसी बैठी थी वैसी ही बैठी रही क्यों कि मुझे आराम से बैठने में पुनः,: उस अजनबी शैतान के पैरों का स्पर्श झेलने का भय था । इंच भर के फासले पर संतोष कर लेने का भी यही एक कारण था ।
मैं पुनः विचारों में खोई गई । चलती हुई ट न की मीठी-मीठी थपकियों और छुक-छुक -छुक -छुक की संगीत भरी मधुर लोरियों ने मेरी गोद में बच्चे को सुला दिया । मैं खिड़कियों के बाहर भागते हुवे पेड़ पौदे चट्टानें मैदान हरे भरे लहलहाते खेत और पहाड़ों की ऊंची नीची चोटियों के धुंधले-धुंधले दृश्य चांदनी रात के मंद प्रकाश में भी स्पष्ट देख रही थी । कहीं -कहीं बरसाती जल से भरे हुये पोखरे, पीली सरसों , फली हुईं गेहूं की बालियां, पोखरों के जल में झलकते चांद का प्रतिबिम्ब बड़े मनोहर लग रहे थे । मेरी ट न आगे-आगे भागती और ये दृश्य विपरीत दिशा को भागते ।मुझे ऐसा ल गा जैसे प्रकृति अपनी दूरी मनुष्य से सदैव बनायें रखती है । हम कितने ही अनुसंधान क्यों न कर लें , दिशाओं की इस विपरीतगामी नियति में एकरूपता नहीं ला सकते । दूरी तो मनुष्य - मनष्य के बीच भी है , तभी न एक ही ट न में बैठे हज़ारों यात्री एक दूसरे से अपरिचित हैं। सबके अपने-अपने गन्तव्य, अपनी -अपनी सीमाएं । न किसी को किसी की चिंता न किसी के प्रति सहानुभूति। हां स्वार्थों में एकरूपता अवश्य है । ट न में प्रत्येक व्यक्ति का एक ही स्वार्थ था कि जगह मिले तो पैर फैला कर आराम से सो जाय ।
मैं विचारों की उधेड़बुन में भूल ग्ई थी कि मैं किसी अपरिचित व्यक्ति के पैताने बैठी हूं। तभी चादरपोश ने पुनः पैर फैला दिये ।
विचारों की तंद्रा टूट गयी । उसके पैर के जोरदार धक्के से मैं सीट से गिरते-गिरते सम्हल गई। इस बार मुझे पूरी तरह क्रोध आ गया था परन्तु मुझे अपने सिद्धांत के अनुसार एक बार और उसको क्षमा करना था । इसी विचार से धैर्य पूर्वक मानवीय वक्तव्य द्वारा उस चादर पोश को समझाने का प्रयत्न करने लगी। मैंने कहा ' भाई साहब ! मुंह ढक कर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ करना अबलापन से भी बुरा है । साहस है तो मुंह खोल कर छेड़िये। चंद घंटों की यात्रा में मनुष्यता के पद चिह्न छोड़ कर जाइये ताकि आने वाला वक्त उज्जवल अतीत को देखें ।उद्दंडता दिखाने को तो लम्बी जीवन यात्रा पड़ी है । '
' ,ठीक कहती हैं बहिन जी आप , एक यात्री ने कहा । बड़ा बद्तमीज व्यक्ति हैं यह। महिलाओं के साथ सल ूक करना नहीं
जानता , जैसे इसके घर में मां बहिनें न हों ।
दूसरा व्यक्ति बोला , आप क्यों इतना सहन कर रही हैं बहिन जी ? कोई और महिला होती तो ठीक कर देती इस कमीनें को ।
हां सच कहते हैं आप । ये बहिन जी बहुत सीधी हैं । एक और यात्री ने हां में हां मिलायी ।
' नहीं -नहीं , मुझे सीधी न समझिये । सुधार तो मैं भी सकती हूं । इन महाशय की तरह मैं नहीं चाहती कि मैं मनुष्यता छोड़ कर पशुओं की पंक्ति में लग जाऊं । ये महाशय पशु हैं तो रहें परन्तु मैं तो मनुष्य हूं। एक अवसर और देती हूं इन्हें , फिर देखूंगी। मनुष्यता से रास्ते पर न आये तो पशु के साथ पशु तो होना ही पड़ेगा । '
' बहुत ठीक, तुम आराम से बैठो बेटी । अब मैं भी देखूंगा इस कमीनें को । साला खुले आम बद्तमीज़ी कर रहा है । देखते-देखते थक गया हूं । ऐसे पैर फैलाये पड़ा है जैसे इसके बाप की गाड़ी हो । टी.टी भी न जाने सब कहां मर जाते हैं । न कोई देखने वाला है न सुनने वाला । इसीलिए सब मनमानी करते हैं । यह भी पता नहीं कि बिना टिकिट के मुंह छिपाये पड़ा है या कोई चोर उचक्का है । सामने वाले वृद्ध सज्जन ने सहानुभूति दर्शाते हुवे मेरे प्रति आत्मीयता प्रकट की ।

कहानी २

आप ही देख लीजिए दादा जी, मैं क्या कहूं। पराई बहू बेटियों को देख कर कैसे बौरा जाते हैं ये सिरफिरे लोग जैसे इनके घरों में महिलाएं हों ही नहीं।
सुभाष की आंखों में क्रोध से लहू उतर आया था। वे बहुत देर से अजनबी की हरकतों का अध्ययन कर रहे थे। मैंने अनुभव किया है कि अब वे और अधिक चुप नहीं रह सकते। बार-बार क्रोध से कभी आगे खिसकते कभी पीछे हटते। कभी उस अजनबी शैतान से चार हाथ करने को कमीज़ की बांहें ऊपर सरकाते और कभी उस व्यक्ति का चादर खींचने के लिये हाथ बढ़ा देते, परन्तु मैं उन्हें बार-बार रोक देती । मैं कहती , ' आपको बोलने की आवश्यकता नहीं है। इस बेचारे के लिये तो मैं ही काफी हूं ।'
तीन बार क्षमा कर देने के बाद अब मैं स्वंय प्रतीक्षा कर रही थी कि वह अजनबी शैतान एक बार फिर मुझे पैर से ठेले और मैं विफल पड़ूं। इस बार मुझे उससे डट कर मोर्चा लेना था । मैंने मन में विचार कर लिया था कि यदि चौथी बार उसने मुझे छेड़ने का दुस्साहस किया तो ऐसा मज़ा चखाऊंगी कि फिर कभी जीवन में किसी महिला के साथ छेड़खानी नहीं करेगा और देखने वाल ों को
भी सीख मिल जायेगी।
छिः कितनी घृणित है ये संस्कृति । इसमें जितने नियम हैं सब पुरषों के बनायें हुए, पुरुषों के पक्ष में और पुरुषों के द्वारा लागू होने वाले हैं । पुरुषों के ही भय से पुरुष ही महिलाओं को छिपा कर पर्दे में रखते हैं और पुरुष ही महिलाओं पर तरह - तरह के अत्याचार करते हैं। महिलाएं इन्हीं की चहारदिवारियों में रहें, इन्हीं की सेवा सुश्रूषा में जीवन खपायें और इन्हीं की वासनाओं का शिकार बनें । हमारा जीवन मशीनों से भी बद्तर है। दूसरे देशों में महिलाएं स्वतंत्र विचरण करती हैं । वहां न कोई किसी के साथ छेड़छाड़ करता है न किसी पर कुदृष्टि डालता है। हमारे देश में लोग महिलाओं को भूखे भेड़ियों की तरह देखते हैं।आज मैं इस पुरुष नाम के जानवर को छेड़खानी का प्रतिदान अवश्य दूंगी। मैं ऐसे ही आक्रोश और प्रतिशोध की भावना से विचलित हो अपने आपको पुरुष नारी मोर्चे के लिये तैयार कर रही थी कि तभी अचानक सुभाष ने मुझे संकेत करते हुवे कहा ,' तुम मेरी जगह पर आ जाओ और वहां मुझे बैठने दो । फिर देखूंगा। '
नहीं सुभाष, न । इस बेचारे को मज़ा चखाने के लि ये मैं ही काफी हूं। मुंह छिपाकर बद्तमीज़ी करने वाल ों से क्या घबराना । मैं निपट लूंगी इससे । सुभाष को आश्वस्त करते हुये मैंने कहा।
फिर अचानक मेरी जंघा में कुछ गुदगुदी सी हुई। मैंने देखा , वह शैतान इस बार पैर को एकबारगी न फैला कर एक पैर के अंगूठे से दूसरे पैर के तलवे को खुजल ाने की सी क्रिया करते -करते पूरी अंगूठा मेरी जंघा पर रगड़ देता और ऐसे खर्राटे भरने का नाटक करता जैसे सचमुच वह गहरी निद्रा में डूबा हो । कुछ देर तो मैं इस अभिनय को भी देखती रही फिर अपने सोते हुवे बच्चे को धीरे से उठा कर सुभाष की गोद में थमा दिया और पैर से चप्पल निकाल कर हाथ में लेते हुए गरज पड़ी ,' कमीने ! अब तेरी शामत आई है ।ले अब छेड़खानी का भुगतान भी भुगत ले , और मैंने भरपूर वार करने के लिये चप्पल ऊपर तान ली । शैतान चादरपोश भी शायद इसी पल की प्रतीक्षा में था। उसने एक झटके से मुंह पर से चादर हटाते हुए मेरा ऊपर उठा हुआ हाथ पकड़ लिया। मैं भौंचक्की रह गई, आंखों में पल भर के लिये अंधेरा छा गया। कमीने का इतना साहस कि मेरा हाथ पकड़ ले । मैंने हाथ छुड़ाने का प्रयास किया तभी एक जोर का ठहाका पूरे कम्पार्टमेन्ट में गूंज उठा । सामने वाले वृद्ध सज्जन भी खुल कर हंस रहे थे । मुझे लगा जैसे कुछ विचित्र सा घटित हो गया है। विचित्र तो था ही। मधुर सुरीली और पतली नारी आवाज़ फूट पड़ी, अरे शोभना तूऽ , ले मार ले मुझे। अरे मार न । रुक क्यों गयी । मैंने तुझे रात भर सताया है। मैं बहुत बुरी हूं।'
मैंने एक पल उसे आश्चर्य से देखा और हाथ की चप्पल नीचे फेंक कर उससे लिपट गई। फिर एक प्यार भरी चपत उसके गाल पर जड़ते हुए कहा' पगली तूने अभी तक शरारत नहीं छोड़ी। वैसी की वैसी है। कोई बदलाव नहीं आया तुझमें ।'
मैं अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि अचानक गाड़ी की गति धीमी हो गई। मुझे लगा जैसे मेरी सुखद यात्रा का प्रारम्भ और अंत एक साथ हुआ है। प्रयाग स्टेशन आ गया था। ट न की गति धीमी हो गई थी। मैंने अपना सामान समेट लिया। फिर वही जाना पहचाना शोरगुल कानों से टकराने लगा।
लो बुन्देलखण्ड एक्सप्रेस आ गई है।
उठो जल्दी करो।
तुम बैग ले लो।
मैं सूटकेश और डोलची लेता हूं। आदि ।
एक झटके से गाड़ी रुक गई। मैंने गाड़ी से नीचे जाते -जाते निशि से कहा, दस वर्ष के बाद मिली है वह भी इस तरह। पूरा समय शरारत में निकाल दिया। मन करता है तुझे पीट कर ही जाऊं।
'अरे बैठ अभी , गाड़ी यहां बहुत देर रुकती है' ।
मैं उसका आग्रह सुनकर बैठ गई।
उसने कहना शुरू किया ' क्या बताऊं शोभना। मेरी हंसने और हंसाने की आदत जाती ही नहीं। अकारण ही सबको छेड़ देती हूं। अच्छा गुस्सा छोड़ 'ले केला खा । उसने एक झोले से केला निकाल कर दिया। फिर उसने जबरदस्ती एक संतरा पकड़ा दिया और फलों का पूरा झोला मेरी बेटी को थमा दिया जैसे अपनी शरारत के लिए पश्चाताप कर मुझे खुश करने का प्रयास कर रही हो । मैं संतरा लेकर छीलने लगी और वह सामने बैठे सज्जन से मेरा परिचय कराने लगी। ये मेरे पापा हैं शोभना। स्टेट बैंक में मैनेजर थे, रिटायर्ड हो चुके हैं। मैं उन वृद्ध सज्जन की ओर मुखातिब हो उन्हें अपल क देखती रही। वे बेटी की जीत पर मुस्करा रहे थे। मैंने भी मुस्कुराते हुए कहा ' पापाजी ! पुत्री के साथ पिता की ऐसी मिलीभगत पहली बार देख रही हूं।
पूरे कम्पार्टमेन्ट का वातावरण हास्य से भर उठा।
सभी ठहाका लगाते ट न से नीचे जाने का प्रयास कर रहे थे। मैंने फिर उसके गाल पर एक चपत लगाते हुए कहा, शैतान चादरपोश! ले व्हिसिल बज गयी। ट न चलने वाली है। मैं उतरती हूं। अब किसके साथ करेंगी शैतानी।
मैंने अपना बैग उठाया और एक पल सजल नेत्रों से निशि की ओर देखा। उसकी आंखें भी डबडबाई हुई थीं। मैं अलविदा कहती हुई ट न से उतर गई। ट न ने गति पकड़ ली। वह हाथ हिला रही थी। थामे हुए अश्रु भी गतिवान हो गये थे ।

विजयलक्ष्मी विभा
साहित्य सदन
149 जी/ 2, चकिया , प्रयागराज - 211016
मोः 7355648767

बुन्देली लोक गीतों में दीवाली

विजयलक्ष्मी विभा

दीपावली भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ त्योहार है। त्योहारों की प्रत्येक देश में अपनी एक परम्परा होती है । परम्परा के अनुसार त्योहारों के मनाने के तरीके प्रथक-प्रथक होते हैं और प्रत्येक परम्परा के पीछे कोई न कोई इतिहास छिपा होता है । दीपावली भारतवर्ष में कैसे आई , इसके पीछे एक प्रचलित कहानी है । कहते हैं रघुवंशी महाराज दशरथ जी की तीन रानियां थीं और चार पुत्र । सबसे बड़ी रानी कौशल्या से राम पैदा हुये , केकैयी से भरत और शत्रुघ्न तथा सुमित्रा से लक्ष्मण । राज परम्परानुसार राजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राजगद्दी देने की घोषणा की , किन्तु रानी केकैयी जो कि दशरथ जी की प्राणप्रिया थीं , राम का राजतिलक सहन न कर सकीं और उन्होंने अपने पुराने दो वरदान जो राजा दशरथ पूर्व में कभी हार चुके थे, मांग लिये । प्रथम वरदान यह था कि भरत को राजगद्दी दी जाय और दूसरा वरदान यह था कि राम को चौदह वर्षों का वनवास दिया जाय । दशरथ जी ने बहुत सर पीटा कि केकैयी अपनी मांग वापस ले ले परन्तु केकैयी ने एक नहीं मानी और राजा दशरथ को अपने वचन पूरे करना पड़े । राम के वन गमन पर सारी अयोध्या ने आंसू बहाये । जन-जन ने केकैयी की भर्त्सना की और राजा दशरथ ने तो प्राण भी त्याग दिये । परन्तु कौन जानता था कि केकैयी के कृत्य के पीछे एक दैवी विधान था । एक ऐसे इतिहास का आयोजन था जो युग-युग तक अमर रहेगा ।

रामचन्द्रजी चौदह वर्ष वन में पूरे करके वापस आ गये और पुनःउनका राजतिलक किया गया। उनके राजतिलक के उपलक्ष में दीपावली मनाई गई । समस्त जन समाज ने अपने-अपने घरों में घी के दिये जला कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की । यह प्रसन्नता भारतवर्ष की स्थाई प्रसन्नता बन गई और यह दीपों का त्योहार भारत का सर्वश्रेष्ठ त्योहार।

इस प्रकार प्रत्येक त्योहार के पीछे कोई न कोई कहानी अवश्य होती है। इन कहानियों का जनमानस पर गहरा प्रभाव अवश्य पड़ता है। बुन्देलखण्ड में राम कथा का प्रभाव इतना अधिक है कि यहां के अधिकांश लोकगीत राम कथा पर ही आधारित हैं । फिर इस बुन्देलखण्ड का लोकमानस लोकनायक राम के वन से आगमन पर मनाई जाने वाली दीपमालिका को अपने गीतों में पिरोना कैसे भूल जाता । जहां एक ओर बुन्देलखण्ड का पुरुष वर्ग सुसज्जित वेश भूषा में लाठियां ले लेकर 'होद दिवाली हो ओ ' के साथ हर्षातिरेक से नाचता हुआ दिखाई पड़ता है वहीं दूसरी ओर महिलाओं के कोकिल कंठ अमराइयों में इन गीतों के साथ गूंजते हुये सुनाई पड़ते हैं

चलौ भौजी लीप लेव द्वारौ ,
आज दिवारी कौ है पिछवारौ ।
हम जौ लीप चौंतरा दैवी ,
तुम ईपे ढिग दै डारौ ।
पोत लेव भौजी दोउ किवाड़े ,
हम जौ पोत लैवी आरौ।
काढ़ा कंगूरा लीपौ मौरीउचंक्षं
आज करौ चहुं दिस
उजयारौ ,
कल है दिवाली कौ भुन्सारौ ।

एक बालिका अपनी भौजी से अनुरोध कर रही है कि हे भौजी , आज दीवाली का पहला दिन है अतः चलो दरवाजा लीप लें । तुम दरवाजे में ढिग लगा दो और मैं इसे लीप लूंगी । तुम दरवाजे के दोनों किबाड़ पोत लेना और मैं खिड़की पोत लूंगी । हे मेरी प्यारी भौजी तुम कंगूरे निकाल कर लीपना और दोनों तरफ बेलें बना देना । आज चारों तरफ सफाई कर लें । कल दीपावली का दिन है ।उक्त गीत में मिल कर काम करने की भावना के साथ -साथ यह भाव प्रमुख हैं कि दीपावली के पर्व पर घर की सफाई करना एक अनिवार्य कार्यक्रम है । आज भी यह कार्य अनिवार्य समझा जाता है और एक माह पूर्व से घर -घर की सफाई होने लगती है ।

आगे देखिये -

जे दियला लेकैं कहां चलीं जू ,
पहरें लहर पटोरे ।
चौदा बरस काट वन में सखि ,
लौटे घर रघुराई,
एहि कार्न रानी केकैइ ने ,
दीवाली सजवाई ,
सो दसरथ जू के महल चलीं हम ,
लेकैं दियला थोरे ।

एक महिला अपनी सखी से पूंछ रही है कि हे सखी ये लहर पटोरे (लंहगा और चुनरी) पहिन कर और साथ में ये दीपक लेकर कहां जा रही हो ? उसकी सखी प्रत्युत्तर देती है कि हे सखी , रघुकुल भूषण रामचन्द्र जी चौदह वर्ष वन में व्यतीत करके वापस आ गये हैं। उनके आगमन की खुशी में रानी केकैई ने समस्त अयोध्यापुरी में दीपावली सजवाई है, अंतः मैं थोड़े से दीपक लेकर दशरथ जी के राज प्रासाद कोजा रही हूं ।

इस लोकगीत से एक ऐसा सत्य ध्वनित हो रहा है जिसे इतिहास ने स्पर्श तक नहीं किया । रामचंद्र जी के वन से आगमन पर रानी केकैई के द्वारा दीपावली का सजवाया जाना एक कटु सत्य है । परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि केकैई ने अपने मस्तिष्क का कलंक दीपों के प्रकाश में धोने के लिये दीपावली अवश्य सजवाई होगी और राम के आगमन पर हर्ष प्रकट किया होगा।

यथार्थ कुछ भी हो । हमारा अभिप्राय केवल लोकगीत के माधुर्य से है। उक्त लोकगीत में कितनी सुन्दर भाव व्यंजना और प्रभावोत्पादक संवाद योजना है । ऐसे लोकगीत अनायास ही लोक मानस से निकलते हैं और युग - युग तक अपना प्रभाव बनाये रखते हैं ।

सो मौटी बरियो बाती ननदी ,
दिया जिन जरहें एक घरी ।
एक दिया में दो -दो बातीं ,
घी भर दइयो चार परी ।
कछु दियला अँगना बिच धरियो ,
कछु द्वारे की ऊ देहरी ।
कछु दियला तुलसन पे धरियो ,
कछु धरियो जहां बँधी कजरी ।
कछु दियला ससुरा जी के कोठा .
कछु धर अइयो ऊ बखरी ।
कहुं अँधियारौ रहन न पावै ,
जनक लली करहें फेरी ।

नायिका अपनी ननदी से कह रही है कि हे ननदी !बातियां जरा मोटी बनाना क्यों कि पतली बातियों से दीपक एक घडी भी नहीं जलेंगे । इतना ही नहीं , तुम एक - एक दीपक में दो - दो बातियां डाल देना और चार - चार परी घी जिससे दीपक सारी रात जलते रहें । आगे वह कहती है कि हे ननदी कुछ दीपक आँगन के मध्य में रखना और कुछ अपने दरवाजे की देहरी पर , कुछ दीपक तुलसी घर में और कुछ वहां जहां कजरी गाय बंधी हुई है । कुछ दिया मेरे ससुर जी के कोठे पर रखना , कुछ पुराने घर में । इस प्रकार घर के कोने-कोने में दीपक में सजा देना । कहीं अँधेरा न रह पावे क्योंकि आज लक्ष्मी स्वरूपा जनक लली आज फेरा लगायेंगीं । पता नहीं वे घर के किस कोने पर कृपा करें

नारी हृदय की त्योहारों के प्रति श्रृद्धा और उत्साह की कैसी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है । कुछ राष्ट्रीय और धार्मिक पर्वों को छोड कर भारतवर्ष के सभी त्योहार भारतीय नारियों के ही त्योहार हैं और नारी समाज ही उन्हें उत्साह और गर्व के साथ युग - युग से मनाता चला आ रहा है और त्योहारों की प्राचीन परम्परा को अक्षुण्य बनाये हुये है जैसा कि उक्त लोकगीत से भी प्रकट होता है ।

भारतीय संस्कृति और हमारे संस्कार

विजयलक्ष्मी विभा

संस्कृति संस्कारों का अन्तर्निहित रूप हैं और संस्कार संस्कृति का बाह्य आवरण । हम यह भी कह सकते हैं कि संस्कृति हमारे संस्कारों की आत्मा है । दोनों को एक दूसरे से प्रथक नहीं किया जा सकता । संस्कारों के बारे में कुछ लिखने से पूर्व संस्कारों को परिभाषित करना अनिवार्य हो जाता है । संस्कारों में हमारा सम्पूर्ण जीवन चरित्र अर्थात जीवन के क्रिया कलाप देखे जाते हैं । हमारा स्वभाव , हमारा परस्पर व्यवहार , वाणी की मृदुता , सामाजिक नियमों को पालन करने की क्षमता , वुजुर्गों का सम्मान , बच्चों के प्रति प्रेम , कानून के प्रति निष्ठा एवं देश प्रेम , ईश्वर में आस्था और विश्वास एवं धार्मिक क्रिया कलाप ।

जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य जो भी कार्य करता है , वे उसके संस्कार कहे जाते हैं और किसी देश के सामाजिक संस्कारों के मिले-जुले रूप के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं से उत्पन्न प्रभाव को उस देश की संस्कृति कहते हैं । भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीनतम विकसित और शिष्ट संस्कृति है जिसने मनुष्य को मानवता की पहचान कराई है । यह भारतीय संस्कृति ही है जिसने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी होने का एहसास कराया है । इस संस्कृति ने सिखाया है कि मनुष्य एक दूसरे के सहयोग के बिना नहीं रह सकता । हमारी वैदिक संस्कृति समूचे विश्व की मानव संस्कृति को आश्चर्य चकित करती है ।तमाम विश्व की संस्कृतियां हमारी वैदिक संस्कृति से सीख लेकर उदित और विकसित हुई हैं । पौराणिक , ऐतिहासिक , आर्थिक , धार्मिक , सामाजिक , सांस्कृतिक , साहित्यिक , नैतिक और भाषाई संस्कृतियां भारतीय संस्कृति से प्रभावित हैं । यहां तक कि हमारे वैग्यानिकों ने भी विश्व का आधुनिकीकरण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । भारतीय वैग्यानिकों के अनुसंधानों की एक लम्बी श्रृंखला है । भारत उन सभी विध्वंसक औजारों का भी अनुसंधान कर्ता है जो अन्य देशों के पास हैं परन्तु हमारे वैग्यानिकों ने मानवीय संस्कारों को सर्वोपरि रखते हुये विश्व शांति की स्थापना करने में पूरी ताकत लगाई है और आज मनुष्यता कायम करने और जन जीवन की उपयोगिता सिद्ध करने में विश्व में सर्वोच्च स्थान ग्रहण कर विश्व गुरु बनने की योग्यता दर्शायी है ।

हमारे संस्कारों में हमारा पाररिवारिक जीवन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । भारतीय परिवार की गरिमामयी प्रतिष्ठापना से समूचा विश्व परिचित है । प्राचीन काल में हमारे सम्मिलित परिवार हुआ करते थे जिनमें दादा दादी , ताऊ ताई , चाचा चाची , माता पिता और भाई बहिनों का निर्विवाद वर्चस्व हुआ करता था । इनमें परस्पर प्रेम , सद्भावनाएँ , आत्मीयता सहयोग एवम सेवा भावनाएँ स्वाभाविक रूप से पैदा होती थीं । ये संस्कार सामाजिक एवं देश की शांति व्यवस्था बनाये रखने में स्वाभाविक रूप से महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते थे ।

दूसरा हमारे जीवन में हमारे धार्मिक संस्कारों की मान्यता है जिसे सभी परिवार अनिवार्य रूप से अपने क्रिया कलापों में शामिल करते हैं । सनातन हिन्दू धर्म के सोलह संस्कार माने गये हैं जो व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक समयानुसार एवं आवश्यकतुसार मनाये जाते हैं । ये धार्मिक संस्कार मन के शोधन की प्रक्रिया स्वरूप हैं । पूर्व जन्म में किये गये दोषों और गलतियों का निवारण तथा वर्तमान में मनोवांछित गुणों की अभिवृद्धि के लिये भारतीय मनीषियों ने बड़े महत्वपूर्ण प्रयोग किये और आदि मानव को मानव बनाने हेतु पूरे जीवन को एक व्यवस्था देकर नियंत्रित कर दिया । उन्होंने हमारे सम्पूर्ण जीवन के लिये सोलह संस्कार बनाये जैसे - गर्भाधान संस्कार , पुंसवन संस्कार , सीमन्तोनयन संस्कार , जातकर्म संस्कार , नामकरण संस्कार , निष्क्रमण संस्कार , अन्नप्राशन संस्कार , विद्यारंभ संस्कार , कर्णभेद संस्कार , यग्योपवीत संस्कार , वेदारंभ संस्कार , केशान्त संस्कार , समावर्तन संस्कार , विवाह ,अन्त्येष्टि संस्कार । ये संस्कार सिखाते हैं कि हमें जीवन में कब , कहां ,कैसे और कौन सा कार्य करना चाहिये । जिस प्रकार प्रकृति की अपनी व्यवस्था है और जिस प्रकार प्रकृति संयम का पालन करती है उसी प्रकार मनुष्य को भी अपना जीवन संयम में रखना चाहिये । यही अच्छे संस्कारों का अवदान है किसी देश की संस्कृति को । यों तो इन सोलह संस्कारों की प्रथक-प्रथक व्याख्या की जा सकती है परन्तु लेख का कलेवर बढ़ने के भय से मैं संस्कारों की संक्षिप्त व्याख्या को ही विराम दे रही हूं ।

विजयलक्ष्मी विभा
साहित्य सदन
149 जी / 2 , चकिया - प्रयागराज - 211016

विभा जी साहित्य में महादेवी सी और संतों में मीरा सी भावनामयी हैं -

श्री श्याम बिहारी सक्सेना

हमारे देश के पहाड़ों , जंगलों , झरनों , ताल , तलैयों के साथ नदियों ने प्रकृति का अपनी-अपनी शैली में श्रृंगार किया है। पहाड़ों ने अपनी तलहटी में रहने वाले तथा नदियों के तटों पर बसने वाले जन जीवन को प्रभावित किया है। इसके प्रभाव को देखने का सबसे सहज मार्ग है, वहां रह रहे कवि , लेखकों ,, साहित्यकारों, संगीतकारों ,और मूर्तिकारों को देखें तो पायेंगे कि उन्होंने जो भी लिखा उनकी संवेदनशीलता का प्रमाण है। सबसे अधिक संप्रेषणशील गुण की श्रेणी में आती हैं नारियां , जिनमें समर्पण , श्रृद्धा , भक्ति रस ममता के अतिरिक्त भाव निहित हैं । उनमें कोमलता , सौन्दर्यबोध और भाव प्रवणता के साथ त्याग की विशेष दृष्टि प्रकृतिदत्त है, ईश्वर प्रदत्त है ।

नदी से प्राप्त वरदान सुश्री विजयलक्ष्मी विभा को जन्म से ही मिले हैं । दूसरा वरदान उन्हें उनके पिता स्वर्गीय अम्बिका प्रसाद दिव्य द्वारा जन्मघुट्टी के रूप में प्राप्त हुआ जो स्वयं ख्यातिनाम इतिहासकार और साहित्य धर्मी थे । इसी क्रम में अपने अनुज श्री जगदीश किंजल्क के सान्निध्य ने सोने में सुहागे का काम किया है ।विभा जी स्नातकोत्तर हैं हिन्दी , अंग्रेजी और पुरातत्व में । उनकी अन्य उपलब्धियों और सम्मान का ब्यौरा पढ़ना या लिखना तथा उनकी अन्य विशेषताओं का उल्लेख करना चाह कर भी नहीं करूंगा क्यों कि वह नकल की श्रेणी में आता है। अपने शैशव काल से युवावस्था तक की जीवन यात्रा में अध्ययन , मनन और चिन्तन की निरन्तर व्यस्तता ने उनमें संजीवनी शक्ति प्रदान की जिसकी प्रतीति उनके काव्य में स्पष्ट देखी जा सकती है ।

एक अद्भुत संयोग रहा कि प्रिय जगदीश किंजल्क ने मुझे एक पुस्तक 'जग में मेरे होने पर ' देकर उस पर लिखने का आग्रह किया। उस पुस्तक को पढ़कर मैं चकित भी हुआ और गौरवान्वित भी हुआ , क्यों कि यह कृति तो पूर्व में बहुत से विद्वानों , विचारकों के आशीर्वचनों से वरदान प्राप्त कर चुकी है। वह सभी मां सरस्वती के वरदपुत्र हैं और जिसको उनका स्नेह , आशीष मिला हो वह भी उसी श्रेणी में हो चुकी है हैं ।

विभा जी स्वयं में कल्पना जगत की प्रश्नावली हैं जो निरन्तर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान खोजने के लिये मन की अतल गहराइयों में डूब कर प्रश्नों को उकेरती हैं और उत्तर पाने को प्रेरित करती हैं पाठकों को । कभी स्वयं से भी प्रश्न करती है- अपना मन चंचल दिखलाऊं । विभा जी को गीत लिखने के लिये अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता । स्वतःशब्द भावों का अनुगमन करने लगते हैं । मैं कुछ रचनाओं की चर्चा में उनके शीर्षक मात्र उठा कर बात को आगे बढ़ाऊंगा ।

'धन ऋण का जीवन जीती हूं ' - इस रचना में जीवन को व्यापारिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। यह शैली श्लाघनीय है। हानि लाभ जीवन मरण को मूलधन ब्याज, पूंजी वितरण जैसी व्यवसायिक बही खाते से जीवन दर्शन का अन्वेषण करती हैं। यह कवयित्री के भौतिक और आध्यात्मिक अध्ययन की ऊंचाइयों का भान देती है , यही उनकी मौलिकता है। वह यथार्थ और कल्पना के बीच एक सेतु हुई यथार्थ परक सत्य को स्थापित करती है । विभा जी के अन्दर एक विन्दास भाव है जो बड़ी प्रबलता से उन्हें बांधे हुये है - ' हो गीत का फेरा मेरे घर ' उन्हें ललचाने के लिये कितने ही उपक्रम हुए किन्तु वह एक ऐसी मिट्टी की बनीं हुई हैं कि जिन्हें सूरज चंदा और मौसम तक नहीं लुभा पाया । ' तृषा का प्रवाह '- वह विरह की बेला में एक आग देखती हैं वहीं मिलन की दशा में भी ताप का अनुभव करती है, मनोदशा की अद्भुत स्थिति है। कल्पना में पाने की कामना और प्राप्ति में विद्रूपता का एहसास, यह दर्शाता है कि उनका सुख दुख के निवारण में नहीं है वल्कि उन्हें तो दुखमय जीवन ही स्वीकार है।

कवयित्री की कल्पना का अपना आकाश है जहां उन्होंने अपने अनुकूल प्रकृति को रच कर बहुत रम्य बना दिया किन्तु इसी रचना की निर्मिति में वे बूढ़ी हो गई। कभी अतीत में खो गई तो कभी मरण की स्मृति में डूब गयी । ऐसे में वर्तमान को जीना और सुख लूटना जाना ही नहीं।

इन्हीं क्रिया कलापों में वह नवगीत के सृजन का सुख पाकर संतुष्ट हैं। यही कवयित्री की उपलब्धि है । संभवतः इस मनोदशा को नाम देना अभी अशेष है। 'नव गीत गुंजाये जीवन के ' में । अन्य रचनाओं में भी ऐसे ही भाव परिलक्षित होते हैं । वह मृत्यु को नये ढंग से देखती है - व्योम हो श्मशान मेरा ' । विभा जी का अभीष्ट है कविता लिखना । वह गीत और काव्य की साधना करती है और विपरीत दिशाओं एवं परिस्थितियों का आभार मानती हैं। विभा की रचनाओं को पढ़ने से लगता है कि वह अकेली रह गई हैं और यही अकेलापन उन्हें भला भी लगने लगा है । जीवन के द्वंद को स्वयं संघर्ष करते हुये निर्द्वंद्व होना चाहती हैं। शायद उन्हें मलिनता से स्वच्छता की ओर बढ़ने का मार्ग मिल गया है और इस संघर्ष में वह स्वच्छंदता का वरण कर चुकी हैं - ' निर्द्वद हुई मैं ' , अब न बजूगी - कवयित्री का शब्द सामर्थ्य बहुत धनाड्य है । वह भाव अभिव्यंजना में सक्षम है- अभाव से जीवन जीने का संकल्प करती हैं । वह घाटे के सौदे से हार चुकी हैं । अब उनका स्वाभिमान सशक्त हो गया है । उनकी स्वतंत्रता का यह दूसरा प्रमाण है।वह अपने प्राप्य से संतुष्ट नहीं है किन्तु और -और पाने की कामना भी नहीं है । अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ने के लिये वह तपस्यारत हैं । शायद मनुष्य के स्तर से ऊपर देवत्व पाने की दिशा में बढ़ने का प्रयत्न करने को विकल है और यही व्याकुलता उनकी काव्य यात्रा है । विभा जी को परिभाषित करने का अवसर लाभ लेते हुये मैं उन्हें चातक कहना चाहूंगा। चातक सम्पूर्ण धरती को मिली बरसात के सुख से समझौता नहीं करता । उसे तो स्वाति नक्षत्र की चाहना है । यही गुण मैंने विजयलक्ष्मी विभा में देखे । वे समझौता करने को नहीं जन्मी हैं - ज़रा देखिये 'बादल भी क्या करें ।'

इस पुस्तक की प्रत्येक रचना मनन करने को बाध्य करती है । मैं एक छोटे से वक्तव्य में उनके गुणात्मक तत्वों को व्यक्त करने में हिचक रहा हूं। मैं स्वयं को शब्दों का कृपण कहने भी नहीं दूंगा, यह जानते हुए भी लोग अधिक अवसर भी नहीं देंगे । मैंने इतना तो जान लिया है कि विजयलक्ष्मी विभा जी साहित्य में महादेवी सी और सन्तों में मीरा सी भावनामयी हैं। मांसल तन के मिलन , प्रेम , आसक्ति से ऊपर, मन की उच्चतर की अवस्था से निकल कर आत्मा से परमात्मा के मिलन की उत्कट कामना में डूब कर ' 'जग में मेरे होने पर ' लिख गयी है । किसी अज्ञात अभीष्ट से मिलने की परिणति क्या होगी , इसे जानने के लिये साहित्य जगत बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षारत है ।

मैं उनके एकांकी भाव से जन्मी स्वाभिमानी स्वच्छंदप्रियता के अन्तस में जलती हवन वेदी को समिधा मिलती रहे , यही शुभेच्छा व्यक्त करते हुए साधुवाद ज्ञापित करता हूं।

श्याम बिहारी सक्सेना
' यथार्थ ' 368 रचना नगर , भोपाल (म.प्र.)
मोबाइलः 9229432215

विभा जी के गीत स्वयं बोलते एवं बतियाते हैं

श्री मयंक श्रीवास्तव

गीत रहेगा साथ हमारे
कर लो इससे प्रीत तुम ।

ये शाश्वत पंक्तियां हिन्दी की सुपरिचित कवयित्री श्रीमती विजयलक्ष्मी विभा की हैं जिनका ताजा गीत संग्रह ' जग में मेरे होने पर ' मेरे सामने है । इसमें विभा जी के 103 गीत संग्रहित हैं ।विभा जी गत 30 वर्षों से सृजनरत हैं । लेखन का संस्कार उन्हें विरासत में मिला है । उनके स्वर्गीय पिता अम्बिका प्रसाद दिव्य अपने समय के प्रसिद्ध लेखक रहे हैं। वे एक कुशल चित्रकार भी थे , वहीं विभा जी को चर्चित कथाकार एवं पत्रकार जगदीश किंजल्क की बहन होने का गौरव प्राप्त है।

विभा जी के गीतों पर चर्चा करते समय समकाल ीनता से हट कर जीवन दर्शन पर बात केन्द्रित करना होगी । उनकी यह पुस्तक दर्शन एवं आध्यात्मिकता के समन्वय का प्रतिनिधित्व करती दिखाई देती है । विभा जी ने इस पुस्तक के माध्यम से अपने को नहीं पूरे जीवन दर्शन को गाया है । इनके गीतों को किसी विचार या विषष की कसौटी मान कर नहीं परखा जा सकता । उन्होंने मानव जीवन को व्यापक दृष्टिकोण से देखा एवं अनुभव किया है तभी वह निम्न पंक्तियों की रचना कर सकीं ।

देने के लिये हमको,
पाना भी चाहिये,
आने के लिये एक दिन ,
जाना भी चाहिये ।

' जग में मेरे होने पर ' के गीत चिन्तन मनन के गीत हैं । वे अपनी उपस्थिति के लिये शोर नहीं करते , वल्कि आज के तनावग्रस्त जीवन में सांत्वना देने का काम करते हैं । बांसुरी की मीठी छुअन के गीत हैं। आदि से अंत तक सच्चाई के गीत हैं। जीवन के यथार्थ को सरलतम शब्दावली में वाणी देने की सफल कोशिश के रूप में पुस्तक को देखा एवं पढ़ा जा सकता है। विभा जी के गीत मीठे स्वप्न दिखा कर कल्पना लोक में खो जाने का काम नहीं करते ।इनके गीत दिशा बोध के गीत हैं। वे हारे थके हताश एवं भटके आदमी को जीवन के सत्य को बताना चाहती हैं कि सुख दुख जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। चाह कर भी दुख या चिन्ताओं से दूर नहीं हुआ जा सकता । ' मुझे नहीं कुछ लेना देना ' शीर्षक गीत में वे शुरुआत में कहती हैं -

' ओ चिंताओ जाओ तुमसे
मुझे नहीं कुछ लेना देना '

मगर इसी गीत में वे आगे कहती हैं -

किन्तु तुम्हारी सेवाओं से ,
रोम-रोम है मेरा उपकृत ,
तन की चिंता जलाओ तो भी ,
मन को दिया तुम्हीं ने अमृत ,
ठहरो आओ ,
नहीं -नहीं तुम
बिना तुम्हारे गीत बने न ।

विवेक एवं दायित्व बोध से लिखे गये विभा जी के गीत स्वयं बोलते एवं बतियाते हैं। इनके गीत समस्याओं का जंगल नहीं उगाते बल्कि समाधान खोजने का काम करते हैं । मुहावरे,बिम्ब , प्रतीक आदि के प्रयोग से अपने गीतों को जटिल होने से बचाया है। इसलिये इन गीतों को पढ़ कर मुझे सुख मिला है । गीतों की भाषा सहज एवं सम्प्रेषणीय है । गेयता , छंद , लय गीत के मूल तत्व हैं । विभा जी ने इसका निर्वहन ईमानदारी से किया है 'धन ऋण का जीवन जीती हूं' के माध्यम से विभा जी ने संतुलित जीवन जीने का आह्वान किया है । जीवन को गीत मय बना कर लय के साथ जीने से जीवनानुभूति आनन्दमय हो जाती है ।इसकी मिठास से दुख दर्द या रुकावटों का एहसास नहीं होता । वे जीवन को ही मीठा गीत समझती हैं । उदाहरण देखें -

' जीवन से बढ़ कर जगती में ,
कोई मीठा गान नहीं है।
गीत कार है
नियति सनातन ,
और गीत है
अपना जीवन ,
गाते जाओ इस
जीवन को ,
गायक बन कर
ऐ जग चेतन ,
सुनने को तारे हैं ऊपर ,
सारा जग वीरान नहीं है।

विभा जी के गीत डूब कर पढ़ने के गीत हैं तभी इनकी गहराई , सोच , रचनाशीलता एवं अर्थवत्ता को समझा जा सकता है ।विभा जी ने गीतों में व्यक्त भावों से संघर्ष नहीं किया बल्कि भावनात्मक रिश्ता बनाया है तभी इनके गीत पठनीय एवं सार्थक बन सके हैं ।

हर गीत कोई संदेश अवश्य देता है । विभा जी के मन में अभी लेखन के प्रति छटपटाहट है इसलि ये इनका लेखन अभी विराम लेने वाला नहीं है । उन्हें अभी लेखन के लक्ष्य तक पहुंचना है । उन्हें अपने सृजन का लक्ष्य एवं गन्तव्य का पता है । इसलिये वे कहती हैं-

हाय मृत्यु तुम अभी न आओ ,
लक्ष्य न पूरा हुआ सृजन का ।

विभा जी गीतधर्मी रचनाकार हैं । उन्होंने अपने अभिव्यक्ति के लिये उस काव्य विधा को चुना है । जिसकी सार्वभौमिक सत्ता उसके उद्गम काल से वर्तमान तक बनी हुई है। उनके मन पंखी ने अपने कत्थ्य एवं सोच के क्षितिज को इस पुस्तक के माध्यम से छूने की कोशिश की है । समीक्षा पुस्तक के गीत मानव कल्याण के गीत हैं । उनकी काव्य प्रतिभा के परिप्रेक्ष्य में यह यकीन करना ग़लत नहीं होगा कि शीघ्र ही समय सापेक्ष को स्पर्श करने वाल ` गीतों का संग्रह आपके हाथों में होगा ।

मयंक श्रीवास्तव
242 , सर्वधर्म कालोनी - सी सेक्टर , कोलार रोड
भोपाल (म.प्र.)

बुन्देलखण्डी लोक नाट्य साहित्य का विकास

विजयलक्ष्मी विभा

बुंदेलखंड का साहित्य के क्षेत्र में अपना एक गौरवपूर्ण स्थान है । उसमें साहित्यिक प्रतिभा का क्रमशः विकास हुआ है और उसने हिन्दी साहित्य को जो कुछ दिया है गण्यमान है । तुलसीदास और केशवदास जैसे मूर्धन्य कवि बुन्देलखण्ड की ही देन हैं ।और भी कितने ही कवि हो गये हैं जिन्होंने बुन्देलखण्ड का साहित्यिक इतिहास भरा है परन्तु उन सबका उल्लेख करना यहां सम्भव नहीं है । ल ोक साहित्य की लगभग सभी विधाओं ने यहां जन्म लिया है और वे फली फूली हैं । लोक साहित्य के अन्तर्गत वह सारा साहित्य आ जाता है जो तृविज्ञान से सम्बंध रखता है ।इसके द्वारा ही आदि काल से चले आते मनुष्य के क्रमिक विकास का पता चल ता है और हमारे लिये यह शास्त्रीय साहित्य से भी कहीं अधिक महत्व का हो जाता है । इसके द्वारा ही आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों से लेकर आज के विकसित युग तक की प्रवृत्तियों का पता चलता है और मनुष्य के क्रमिक विकास के मूल्यांकन में वह सहायक होता है ।

पृथ्वी पर मनुष्य जिस -जिस वस्तु के सम्पर्क में आता है और उसे जिससे सुख -दुख की अनुभूति होती है तथा उसका ज्ञान भंडार बढ़ता है,उस सब पर वह अपनी भाषा में कुछ न कुछ कह जाता है और वह बिना लेखन के भी पीढ़ी दर पीढ़ी चल ता रहता है । सम्पर्क में आने वाली वस्तुएं बहुत हैं , जैसे पृथ्वी और आकाश, वनस्पति जगत , पशु जगत ,मानव जगत इत्यादि। इनसे संघर्ष करते हुये उसे जो अनुभूतियां उपलब्ध होती हैं उन्हें ही वह विविध विधाओं द्वारा व्यक्त करता है । उन विधाओं में गीत, कहानी,

कहावतें, वार्ताएं, इत्यादि सभी आते हैं । इसे ही ल ोक साहित्य कहते हैं ।

बुंदेलखंड में लोक साहित्य की प्रायः सभी विधाएं पाई जाती हैं परन्तु लोक नाट्य का अभाव सा महसूस किया जा रहा है। नाटकों के साथ एक बड़ी असुविधा यह जुड़ी हुई है कि वे बिना लिपिबद्ध किये जीवित नहीं रह सकते। अंतः उनका जो विकास हुआ भी है , गीतों के रूप में हुआ है और गीतों में ही लोक नाटकों का कथोपकथन प्रचलित हुआ है , और इसीलिये ये गीतों की ही विषय वस्तु बन गए हैं। मंच की नहीं।

2

: इन गीतों का मंचन यद्यपि सम्भव है परन्तु उनसे जुड़ी हुई असुविधाओं को देखते हुये उन्हें अधिक महत्व नहीं दिया गया। कुछ नटों और भांडों ने ही उन्हें अपनाया और अपनी भाव भंगिमाओं द्वारा उन्हें अभिनीत कर अपने जीविकोपार्जन का साधन बनाया । वे उन जातियों से ही अभिन्न होकर जुड़ गये और उनके ही बन गये । उनकी सार्वभौमिकता नष्ट हो गई।

जीवन स्वयं एक बड़ा नाटक है और उसको प्रत्येक व्यक्ति दिन प्रतिदिन अभिनीत करता रहता है परन्तु उनका अपना मंच भी उनका अपना ही होता है । वह सार्वभौम नहीं होता । हां विनोद मनुष्य के जीवन का एक अविभाज्य अंग है । प्रत्येक मनुष्य में कुछ विनोद प्रियता होती है और वह उसे अभिव्यंजना देने के लिये अपना छोटा सा मंच भी बना लेता है । यह विनोद प्रियता स्त्री जाति में भी होती है । शादी विवाह के समय स्त्रियां इस विनोद प्रियता का प्रदर्शन अपने निवास पर ही मंच बना कर बाबा बाई के रूप में अभिनीत करती हैं ।

जब किसी के घर में किसी लड़के का विवाह होता है और पूरे परिवार के पुरुष सदस्य बारात लेकर वधू के घर चले जाते हैं , तब उस घर की स्त्रियां उसी रात कुछ परम्परागत खेलों का आयोजन करती हैं ।आवश्यक यह होता है कि जाग कर ही पूरी रात बिताई जाये । पूरी रात जागने के पीछे एक और उद्देश्य छिपा होता था । कहा जाता है कि विवाह के घर को चोरी डकैती से सुरक्षित रखने के लिये स्त्रियां पूरी रात नाटक खेलती थीं । उनके ये खेल नाटक के आदि रूप थे । इन्हें बाबा-बाई की संज्ञा दी जाती थी । इन खेलों में नारियां पात्रों के अनुरूप बेश भूषा बनाती थीं । वाद्यों में ढोलक मात्र ही इनका बाद्य होता था । घर का आंगन इनके लिये खुले मंच का कार्य करता था । किसी एक विनोदप्रिय स्त्री को बाबा बनाया जाता था । उसे दाढ़ी-मूंछ इत्यादि पुरुषोचित वेष में सजाया जाता था । सिर पर लम्बी जटायें पहनाई जाती थीं ।

भगवा वस्त्र पहनाये जाते थे ।हाथ में एक कमंडल और एक माला दी जाती थी । जो स्त्री बाई बनती थी , वह एक रूमाल से बाबा को पंखा झलती चलती थी । अन्य नारियां गीत गाती थीं ।

मोरे बाबा अमली , बगिया में भंगिया घुटाय रखते ।
काहे कौ घुटत्रा बाबा , काहे की कुड़ी ,
को है बाबा घौंटनहारौ , को है अमली ।
सौने कौ घुटत्रा बाबा ,रूपे की कुड़ी ,
बाई तुम्हारी घौंटनहारी , बाबा अमली ।

बाबा अपने हाथ में एक बेलन लिये हुये एक-एक स्त्री के पास जाता है । स्त्रियां हंसती हुई कहती हैं 'बाबा यहां नहीं , उसके पास जाओ ' बाबा एक से दूसरे के पास दौड़ता फिरता है और हास्य का माहौल बना देता है । स्त्रियां ठहाके लगाती हुई दौड़ती फिरती हैं । अन्त में बाबा दूल्हे की मां के पास जाता है । दूल्हे की मां उसका तिलक करती है और नाटक का पहल ा अध्याय समाप्त हो जाता है।

दूसरा दृश्य फिर एक बाबा का ही होता है । बाबा के हाथ में एक डंडा होता है जिसे वह राम डंडा कहता है । दूसरे हाथ में एक माला होती है । बाबा माला के गुरियों (मोतियों) को सरकाता हुआ चलता है और गीत गाता है ।

सट्ट गुरिया पट्ट माला , जे चले हरदौल बाबा ।

इस तरह बाबा लोटा लेकर प्रत्येक स्त्री के पास जाता है और नहाने का अभिनय करता है । स्त्रियां कहती हैं ' बाबा इस झिरिया में नहीं उस झिरिया में जाओ ' इसका पानी गंदा है , उसका उज्जवल है । बाबा भागता है । अंत में वह दूल्हे की मां के पास जाता है। मां उसका भी टीका करती है और नाटक समाप्त होता है ।

तीसरा दृश्य शिव शंकर का होता है ।एक महिल ा शिव बनती है और दूसरी पार्वती । फिर यह गीत गाया जाता है ।

शिव शंकर गये कैलाश बुंदियां परने लगीं।
कौन की बुब गयी हरी-हरी मेंहदी ,
कौन की बुब गयी भांग ।
गौरा जू की बुब गयी हरी-हरी मेंहदी ,
शिव शंकर की बुब गयी भांग ।
गौरा जू की बंट गयी हरी-हरी मेंहदी,
शिव शंकर की घुट गई भांग ।
गौरा जू की रच गई हरी-हरी मेंहदी,
शिव शंकर की चढ़ गई भांग ।

इस गीत के उपरांत दूल्हे की माता आती है और शिव
पार्वती दोनों का टीका करती है। ये दृश्य भी समाप्त होता हैं ।

इसके पश्चात कोरी और कोरिन का एक नाटक अभिनीत होता है दो स्त्रियां एक धोती (साड़ी) दोनों ओर से फैला कर ताना बाना की रचना करती हैं । फिर एक स्त्री जो कोरी बनी हुई है , सूप को ल `कर उस पर इस तरह चलाती है जैसे कोई कपड़ा ही बुना जा रहा हो । इसमें भी एक गीत गाया जाता है ।

मैं कोरी मस्ताना, ताना कौन बुनेगा ।

इसमें भी दूल्हे की मां आकर कोरी और कोरिन का टीका करती है और नाटक समाप्त होता है ।

3

गुसांई जी के दियाले में ,
धर अइयो जू जे घी के दिया ।
एक लेस लै जाव इतइं सें ,
चार लेसियो उतइं पिया जे दियला घर रोशन करहें ,
दर्शन देहें राम सिया ।

स्त्री अपने पति से कह रही है कि हे स्वामी ये घी के दीपक गुसांई जी के मंदिर में रख आओ । ये दीपक हमारे घर को रोशन करेंगे और हमें राम सीता के दर्शनों का सौभाग्य प्रदान करेंगे ।

दीपावली के दिन लक्ष्मी जी के पूजन के बाद सर्वप्रथम पांच घी के दिये गुसांई जी के मंदिर में रखने की प्रथा आज भी प्रचलित है । पांच दीपक गुसांई जी के मंदिर में पहुंचाने के बाद ही घर की स्त्रियां अन्य दीपक जलाती हैं और घर में सजाती हैं । उनका विश्वास है कि गुसांई जी ही उनके दीपों में प्रकाश भरते हैं और उन्हीं से घर रोशन होता है तथा लक्ष्मी का आगमन होता है । देखिये -

देखन चलिये चलौ मोरी आल ी ,
नगर अयोध्या की दीवाली ।
राजा राम लौट घर आये ,
सब सखियन मिल साज सजाये
घर-घर होवै खुशहाली ।
रानी कौंशिल्या दीप सजावें ,
और सुमित्रा ज्योति जगावें ,
केकैई नाचें दै ताली ।
राजा राम जू तिल क करावें ,
गुरूजन आशिष दै दै गावें ,
रात भोर सी उजियाली ।

महिलाएँ परस्पर एक दूसरे से कह रही हैं कि हे सखी चलो , नगर अयोध्या की दीवाल ी देखने चलें । राजा रामचंद्र जी लौट कर घर आ गये हैं और सब सखियों ने मिल कर साज सजाये हैं । आज घर - घर में खुशी छाई हुई है । रानी कौशिल्या दीप सजा रही हैं और रानी सुमित्रा दीपों की ज्योति जगा रही हैं तथा रानी केकैई ताली बजा बजा कर
नाच रही हैं । राजा राम चंद्र जी तिलक करा रहे हैं और गुरुजन आशीर्वाद दे देकर गा रहे हैं । आज की रात भी प्रभात की तरह उज्ज्वल हो रही है अतः हे सखी चलो , नगर अयोध्या की दीवाली देख आवें । नगर अयोध्या में इस समय रोशनी की छटा निराल ी है ।

इस प्रकार लोकगीतों में त्योहारों की भिन्न - भिन्न झाँकियाँ देखने को मिलती हैं । ये झाँकियाँ बुन्देलखंड की संस्कृति की प्रतीक तो हैं ही , साथ ही उस संस्कृति का भविष्य भी उज्ज्वल बनाती हैं । कहना न होगा कि बुन्देलखंड के संगीत जगत में इन गीतों का अपना प्रथक स्थान है और वह उतना ही उज्जवल है जितना दीपमालिका के दीपों का ज्योतिर्मय आलोक । जैसे ये गीत दीपों का अभिनंदन करते हैं वैसे ही दीपमालिका इन गीतों को प्रकाश प्रदान करती रहे ।

विजयलक्ष्मी विभा
साहित्य सदन
149 जी / 2 , चकिया ,
प्रयागराज - 211016
मोः 7355648767,

शहर समता साप्ताहिक पत्र के हर माह निकलने वाले विशेषांकों का ब्यौरा

१- केन्द्रित विशेषांकः शहर समता साप्ताहिक (हर माह - ८ पेज)

इस विशेषांक के लिये कम से कम 8 लेख - रचनाकार के व्यक्तित्व, कृतित्व पर आधारित, रचनाकार की एक कहानी या एक लेख और फुटकर कविताएँ (कम से कम 15-20) तथा रचनाकार का आत्मसंघर्ष (लेख) साथ में एक पोस्टकार्ड साईज की फोटो तथा अन्य सात-आठ फोटोग्राफ।

2- कवि और कविता विशेषांक (हर माह 4 पेज)

रचनाकार का आत्मसंघर्ष लेख तथा 35 - 40 कविताएँ तथा एक पोस्टकार्ड साईज की फोटो तथा दो तीन फोटो और मंच पर काव्यपाठ करते हुए या मंच पर बैठे हुए या संचालन करते हुए।

३- नवांकुर काव्यगोष्ठी विशेषांक (हर माह ४ पेज)

इसमें हर काव्यगोष्ठी में 10 - 12 रचनाकारों का काव्य पाठ होता है तथा तीन समीक्षकों द्वारा उनकी कविताओं पर टिप्पणियां लिखित रूप में छपती हैं।

4- महिला काव्य गोष्ठी विशेषांक (हर माह 4 पेज)

शहर समता विचार मंच की महिला काव्य गोष्ठी में काव्य पाठ करने वाली हर रचनाकार की वही रचना जिसे उन्होंने पढ़ा है छपेगी तथा एक महिला रचनाकार (पुराने या नये पर) विश्लेषण (लेख) छपता है।

५- पुरुष काव्यगोष्ठी विशेषांक (हर माह ८ पेज)

शहर समता विचार मंच के पुरुष काव्यगोष्ठी में काव्य पाठ करने वाले हर रचनाकार की वही रचना जिसे उन्होंने पढ़ा है छपेगी तथा एक पुरुष रचनाकार (पुराने या नये पर) विश्लेषण (लेख) छपता है।

6- पाँचवां विशेषांक (हर तीसरे माह 8 पेज) विमर्श अंक

इसमें 4 पेज इतिहास खंड और 4 पेज आज के दौर की कविता, कहानी, लेख समीक्षा, पुस्तक समीक्षा आदि।

www.shaharsamta.com

संपादक,
शहर समता हिन्दी साप्ताहिक
उमेश श्रीवास्तव
प्रयागराज (इलाहाबाद)

नोट - ('शहर समता विचार मंच' शहर समता समाचार पत्र द्वारा संचालित होता है।)

महिला श्री साहित्य साधना सम्मान 2025

दिन शुक्रवार 25 जुलाई 2025

महिला श्री साहित्य साधना सम्मान 2025 इस बार प्रयागराज की वरिष्ठ साहित्यकार विजय लक्ष्मी विभा जी को

कार्यक्रम स्थल - सारस्वत सभागार
113ए, लूकरगंज
अग्रसेन इण्टरमीडिएट कालेज के बगल में
(वेदिक ग्रीन सोसाइटी के सामने की गली)

समय - शाम 4 बजे से

साहित्यिक संयोजक
रचना सक्सेना

कार्यक्रम संयोजक
डॉ०प्रदीप चित्रांशी
संजय सक्सेना

संस्थापक /सचिव
उमेश श्रीवास्तव